बुद्ध-वाणी

सब्ब पापस्स अकरणं,
कुसलस्स उपसंपदा ।
सचित्त परियोदपनं,
एतं बुद्धान सासनम् ॥

卐

सस्ता साहित्य मंडल
दिल्ली

सस्ता साहित्य मण्डल

सत्तरवाँ ग्रन्थ

---

[७०]

बुद्ध-वाणी

वियोगी हरि

प्रकाशक
सस्ता साहित्य मण्डल
दिल्ली.

पहली बार २०००
सन १९३५
मूल्य दस आना

पूज्य मालवीयजी की अपील

"'सस्ता साहित्य मण्डल' ने हिन्दी में उच्चकोटि की सस्ती पुस्तकें निकालकर हिन्दी की बड़ी सेवा की है। सर्वसाधारण को इस संस्था की पुस्तकें लेकर इसकी सहायता करनी चाहिए।"

मदनमोहन मालवीय

मुद्रक
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
दिल्ली

प्रस्तावना

आचार्य काका कालेलकरने एक जगह लिखा है कि, "बुद्ध-भगवान् की शिक्षा आज के युग के लिए विशेष रीति से अनुकूल है, विशेष रीति से पोषक है।" संसार मे आज हर चीज का बड़ी बारीकी से विश्लेपण हो रहा है। विश्लेषण की कसौटी पर जो चीज खरी नही उतरती, उसे अपनाने क्या छूनेतक मे दुनिया अब आनाकानी करने लगी है। मानवता के मूल में ओतप्रोत धर्म फिर इस व्यापक छानबीन से, इस बौद्धिक क्रांति से अछूता कैसे रह सकता था ? ससार के छोटे-बड़े धर्म-मजहबो का भी इधर कुछ वर्षो से स्वतंत्र दृष्टि से विश्लेषणात्मक अध्ययन होने लगा है। और इसीसे काका कालेलकरने वर्तमान शताब्दी को 'धर्म-मन्थन-काल' कहा है। इस धर्म-मन्थन-काल में इलहाम ,का 'आर्डिनेन्स' मानने को आज मनुष्य की आत्मा तैयार नही, यद्यपि

कभी-कभी अंध-अश्रद्धावश आवेश में वह अविवेक का भी प्रदर्शन कर बैठती है। शुद्ध बौद्धिक कसौटी पर कसते समय यह देखा जाता है कि वह धर्म समभाव और समन्वय का कहातक समर्थक है, वैषम्य और द्वेष की आग को वह उत्तेजन तो नही दे रहा है, और सर्वसाधारण का 'कल्याण' उसके द्वारा कहातक सपादित होता है। किन्तु इस धर्मतुला को मै एकदम नई कसौटी कहने के पक्ष मे नही हूँ। धर्म की यह तराजू उतनी ही प्राचीन है, जितनी प्राचीन कि हमारी प्रज्ञा है। कई सदियोतक हमारे अधर्ममूलक तअस्सुबने इस अनमोल चीज को ओझल जरूर कर रखा था, और कुछ अशो में आज भी कर रखा है, पर जगत् के क्रातदर्शी सतो और महापुरुषोने अपना शोधन-कार्य तो सदा जारी ही रखा। समय-समय पर उन्होने मनुष्य की बुद्धि पर पडा हुआ वह विभेदक पर्दा उठाया और उससे कहा कि—"देख, धर्म का सच्चा सनातनरूप यह है, **एष धर्मः सनातनः**।" भगवान् बुद्धने तो अत्यत स्पष्ट शब्दो में कह दिया था कि, "आओ, और अपनी **'प्रज्ञा की आँख से'** धर्म को देखो—**एहि पश्यक धर्म**।" यही कारण है कि बुद्ध भगवान् की शिक्षा आज के युग के लिए विशेष रीति से अनुकूल है और विशेष रीति से पोषक है।

जहा अन्य धर्मोने पात्र मे रखी जानेवाली 'वस्तु' के विवेचन में अपने दार्शनिक ज्ञान की सारी पूजी खर्च कर डाली है, वहा बौद्धधर्म मे पात्र की सम्यक् शुद्धि पर ही सब से अधिक जोर दिया गया है, और यही इस मानवधर्म की सबसे बडी विशेषता है। और इसीमे आस्तिक और नास्तिक दोनो ही इस कल्याण-मूलक धर्म में समान समाधान पाते है। कोई विवाद नहीं, कोई

कलह नही । अष्टांगिकमार्गी या अन्त.शुद्धि का साधक [illegible] वाद-विवाद से अलग ही रहेगा । मैत्री, मुदिता और करुणा [illegible] शीतल जल में जिस मनृष्यने अपना रोम-रोम भिगो लिया है, वह विवाद, द्वेष और कलह की कभी कल्पना भी नही कर सकता । वह किसके साथ तो राग करे और किसके साथ द्वेष ?

यह सही है कि रूढ़िप्रिय मनुष्य की अंतड़ियों के घातक फोड़े मे बुद्ध भगवान्ने नश्तर लगाया था, और उससे वह एकबार क्रुद्ध हो चीख उठा था । पर वहां भी भगवान् की असीम करुणा काम कर रही थी । उन्हे तो तृष्णा-शल्यांविद्ध मनुष्य के अतर की पीड़ा हरनी थी, उसका सारा सड़ा मवाद निकालना था, उसका हृदय-घट शुद्ध करना था । रोगी के प्रलाप और अभिशाप से भगवान् डर जाते तो उसे 'ब्रह्मविहार' का आनंद-लाभ कैसे होता ? पीछे, जब आंखे खुली तो अपने महाकारुणिक चिकित्सक को उसने जगत् का उद्धारक ही नही, ईश्वर का अवतार तक माना, और उसकी श्रद्धावनत अंतरात्मा से वरवस ये शब्द निकल पड़े—

बुद्धं शरणं गच्छामि;
धर्मं शरणं गच्छामि;
संघं शरणं गच्छामि ।

× × × ×

समय के फेर से बौद्धधर्म आज अपनी जन्मभूमि भारत में प्रत्यक्ष नही दिखाई देता, पर यह नही कहा जा सकता कि उसका सर्वथा लोप हो गया है । हमारे राष्ट्र पर, हमारे जीवन पर आज भी उस महान् मानवधर्म की अमिट छाप लगी हुई है । भले ही

हम अपने को प्रत्यक्ष में बौद्ध न कहे, पर बौद्धधर्म का प्रेरणाप्रद प्रभाव हम भारतवासियो के जीवन में परोक्षत. कुछ-न-कुछ काम तो कर ही रहा है। प्रयाग में आज तीसरी नदी का प्रत्यक्ष दर्शन कहा होता है, पर त्रिवेणी के एक-एक कण का महत्व और अस्तित्व उस लुप्तधारा सरस्वती की ही बदौलत बना हुआ है।

पर इस तरह आत्म-सतोष कर लेने से काम नही चलेगा। भगवान् बुद्ध का हमारे ऊपर बहुत बडा ऋण है। बौद्ध-वाङ्मय के प्रति हमारी यह भारी उदासीनता सचमुच अक्षम्य है। हमारी राष्ट्रभाषा का बौद्ध-साहित्य के प्रकाशन मे तीसरा नंबर आता है। यह हमारे लिए भारी लज्जा और दु ख का विषय नही तो क्या है ? बगभाषा का बौद्ध-साहित्य के प्रकाशन में प्रथम स्थान है। उसके बाद मराठी का नबर है। मराठी में आचार्य धर्मानन्द कोशांबीनें बड़ी योग्यता और विद्वत्तापूर्वक अनेक पाली ग्रन्थो का अत्यत सुदर अनुवाद किया है। कोशाबीजी के कुछ बौद्ध ग्रन्थों का गुजराती भाषातर भी प्रकाशित हो चुका है। हिंदी मे तो दो-तीन साल पहले, सिवा चार-पांच बुद्ध-जीवनियो और धम्मपद के तीन-चार अनुवादों के, कुछ था ही नही। इधर बेशक इस दिशा में हिंदीने अच्छी प्रगति की है। महापडित त्रिपिटकाचार्य श्री राहुल साकृत्यायनने समस्त 'त्रिपिटक' (सुत्तपिटक, विनय पिटक और अभिधम्म पिटक) का हिंदी-अनुवाद करने का निश्चय किया है। 'मज्झिम निकाय' का अनुवाद तो प्रकाशित भी हो गया है। श्री राहुल साकृत्यायन द्वारा सकलित 'बुद्धचर्या' भी हिंदी में एक अद्वितीय ग्रन्थ है। श्री साकृत्यायनजी का सपादित आचार्य वसुबंधु-रचित 'अभिधर्मकोश' भी प्रकाशित हो चुका है। यदि

यही क्रम जारी रहा तो श्री सांकृत्यायनजी के कथनानुसार ... बौद्ध-साहित्य के अनुवाद में हिंदी का स्थान भारतीय भाषाओं में ही प्रथम नहीं हो जायगा, बल्कि हमारी मातृभाषा यूरोपीय भाषाओं से टक्कर लेने लगेगी।

अब दो शब्द प्रस्तुत पुस्तक पर। धम्मपद का मैं एक जमाने से भक्त हूँ। इधर श्रीधर्मानन्द कौशाबी और श्री राहुल सांकृत्यायन के अनुवादित ग्रन्थ देखकर तो मैं 'कुसलस्स उपसंपदा' वाले बुद्ध-शासन पर आशिक हो गया हूँ। 'सुत्तनिपात' तो दो बार पूरा पढा, तो भी तृप्ति नही हुई। पुस्तक पढते समय अपने अत्यत प्रिय स्थलो पर निशान लगाने की मेरी पुरानी आदत है। पढ़ते-पढ़ते मुझे सूझा कि भगवान् बुद्ध की सूक्तियो का लगे हाथों एक छोटा सा विषयवार संग्रह क्यो न कर डाला जाय ? मित्रो में चर्चा की तो उन्होने मुझे प्रोत्साहन दिया। उसी इच्छा और प्रोत्साहन का परिणाम यह 'बुद्धवाणी' नामक सूक्ति-संग्रह है।

आरंभ में आर्यसत्य-चतुष्टय, अष्टांगिक मार्ग, स्मृत्युपस्थान आदि बौद्धधर्म के मूल विषय कदाचित् पाठको को ऊपर से कुछ नीरस से लगें, पर जरा मनोयोगपूर्वक पढ़ेंगे तो इन दार्शनिक सूक्तियो में उन्हे आत्म-तृप्तिकर आनंद-रस मिले बिना न रहेगा। अत में 'सूक्तिकण' नामक एक खंड है, जिसमें विविध विषयो की सूक्तियों का संग्रह किया गया है। पाठकों से मेरा आग्रह है कि सूक्ति-कण को वे अवश्य आद्योपान्त पढ़ें।

कौन सूक्ति किस ग्रन्थ से ली गई है इसका निर्देश मैंने प्रत्येक सूक्ति-संग्रह-विभाग के अंत में कर दिया है। पुस्तक के अंत में

बौद्ध-साहित्य में प्रयुक्त खास-खास पारिभाषिक शब्दों का एक संक्षिप्त कोश भी दे दिया है।

'बुद्ध-वाणी' ने लोगों के हृदय में यदि बौद्ध-वाङ्मय के निर्मल सरोवर में अवगाहन करने की जरा भी लालसा जगाई तो मैं अपना यह तुच्छ प्रयास सफल समझूंगा।

दिल्ली,
श्रावण, सं० १९९२ } वियोगी हरि

ग्रन्थ-संकेत-निर्देश

म. नि.	=	मज्झिम निकाय (राहुल सांकृत्यायन)
दी. नि.	=	दीघ निकाय
अं. नि.	=	अंगुत्तर निकाय
सं. नि.	=	संयुत्त निकाय
ध. प.	=	धम्मपद
सु. नि.	=	सुत्त निपात (धर्मानन्द कौसम्बी-गुजराती संस्करण)
बु. च.	=	बुद्धचर्या (राहुल सांकृत्यायन)
बु. ली.	=	बुद्धलीला (धर्मानन्द कौसम्बी-गुजराती संस्करण)
बु. दे.	=	बुद्धदेव (जगन्मोहन वर्मा)

विषय-निर्देश

बुद्ध-वाणी

बुद्ध-वाणी

भगवान बुद्ध

नमो तस्स भगवतो
अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

卐

बुद्धं सरणं गच्छामि
धम्मं सरणं गच्छामि
संघं सरणं गच्छामि

बुद्ध-वाणी

बुद्ध-शासन

१. सारे पापों का न करना, 'कुशल धर्मों,' अर्थात् पुण्यों का संचय करना, और अपना चित्त परिशुद्ध रखना—यही बुद्धों की शिक्षा है।

*

१. सब्ब पापस्स अकरणं
कुसलस्स उपसंपदा;
सचित्त परियोदपनं
एतं बुद्धान सासनं।

२. बुद्धों की यह शिक्षा है :—

(१) निंदा न करना;

(२) हिंसा न करना;

(३) आचार-नियम-द्वारा अपने को सयत रखना;

(४) मित भोजन करना;

(५) एकात में वास करना;

(६) चित्त को योग में लगाना।

---

२. अनुपवादो अनुपघातो,
पातिमोक्खे च संवरो;
मत्तञ्ञुता च भत्तस्मिं
पतञ्च सयनासनं।
अधिचित्ते च आयोगो
एतं बुद्धान सासनं।

१—२. ध. प. (बुद्धवग्गो)

महामंगल

१. मूर्खों के सहवास से दूर रहना, सत्पण्डितो का सत्सग करना, और पूज्यजनो को पूजना ही उत्तम मंगल है।

२. अनुकूल प्रदेश का वास, पुण्यों का सचय और सन्मार्ग मे मन की दृढता—यही उत्तम मंगल है।

३. विद्या और कला का संपादन, सद्व्यवहार का अभ्यास तथा समयोचित भाषण—यही उत्तम मगल है।

४. माता-पिता की सेवा, स्त्री-पुत्रादि की सँभाल और व्यवस्थित रीति से किये हुए कर्म—यही उत्तम मगल है।

५. आदर, नम्रता, सतुष्टि, कृतज्ञता और बारबार सद्धर्म का सुनना—यही उत्तम मगल है।

६. क्षमा, मधुर भाषण, संतो का सत्सग और बारबार धर्मचर्चा—यही उत्तम मगल है।

७. तप, ब्रह्मचर्य, आर्यसत्यो* का ज्ञान तथा निर्वाणपद का साक्षात्कार—यही उत्तम मंगल है।

---

*दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध और दुःख-निरोध का मार्ग, इन चार सत्यों को भगवान् बुद्धने 'आर्यसत्य-चतुष्टय' कहा है।

१—७. सु. नि. (महामंगल सुत्त).

आर्यसत्य-चतुष्टय

१. पहला आर्यसत्य दुःख है। जन्म दु ख है, जरा दु ख है, व्याधि दु.ख है, मृत्यु दु.ख है, अप्रिय का मिलना दु.ख है, प्रिय का विछुड़ना दु.ख है, जिसे चाहे वह न मिले तो वह भी दुःख है। संक्षेप में, रूप, वेदना, सज्ञा, संस्कार और विज्ञान यह पंचोपादान स्कंध (समुदाय) ही दु ख है।

२. दुःखसमुदय नाम का दूसरा आर्यसत्य यह तृष्णा है, जो पुनर्भवादि दु ख का मूल कारण है। यह तृष्णा राग के साथ उत्पन्न हुई है। सासारिक उपभोगो की तृष्णा, स्वर्गलोक में जाने की तृष्णा, और आत्महत्या करके संसार से लुप्त हो जाने की तृष्णा इन तीन तृष्णाओ से मनुष्य अनेक तरह का पापाचरण करता है और दु ख भोगता है।

३. तीसरा आर्यसत्य दुःखनिरोध है। यह प्रतिसर्गमुक्त और अनालय है। तृणा का निरोध करने से निर्वाण की प्राप्ति होती है, देहदंड या कामोपभोग से मोक्षलाभ होने का नही।

४. चौथा आर्यसत्य दुःख-निरोधगामिनी प्रतिपदा है। इसी आर्यसत्य को अष्टांगिक मार्ग कहते हैं। वे अष्टांग ये हैं :—

(१) सम्यक् दृष्टि,

(२) सम्यक् संकल्प,

(३) सम्यक् वचन,

(४) सम्यक् कर्मान्त,

(५) सम्यक् आजीव,

(६) सम्यक् व्यायाम,

(७) सम्यक् स्मृति,

(८) सम्यक् समाधि।

दु:ख का निरोध इसी मार्ग पर चलने से होता है।

५. दुःख नामक पहला आर्यसत्य पूर्व धर्मों में नहीं सुना गया था। यह दुःख नामक आर्यसत्य **परिज्ञेय** है।

६. **दुःखसमुदय** नाम का दूसरा आर्यसत्य पूर्व धर्मों में कभी नही सुना गया था। यह दु:खसमुदय नाम का आर्यसत्य **त्याज्य** है।

७. **दुःखनिरोध** नाम का तीसरा आर्यसत्य पहले के धर्मों में नही सुना गया था। यह दु:खनिरोध नाम का आर्यसत्य **साक्षात्करणीय कर्तव्य** है।

८. **दुःख-निरोधगामिनी प्रतिपदा** नाम का चौथा आर्य-सत्य पूर्व धर्मों में नही सुना गया था। यह दु:खनिरोधगामिनी प्रतिपदा नामक आर्यसत्य **भावना करनेयोग्य** है।

९. इस 'आर्यसत्य-चतुष्टय' से मेरे अंतर में चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक की उत्पत्ति हुई।

१०. जब से मुझे इन चारों आर्यसत्यों का यथार्थ सुविशुद्ध ज्ञानदर्शन हुआ, तब से मैंने देवलोक में, मारलोक में, श्रमण-जगत् और ब्राह्मणीय प्रजा में, देवों और मनुष्यों मे यह प्रगट किया कि मुझे अनुत्तर सम्यक् संबोधि* प्राप्त हुई और मैं **अभिसंबुद्ध**

---

* परमज्ञान, मोक्षज्ञान

हुआ, मेरा चित्त निर्विकार और विमुक्त हो गया। और यह अब मेरा अंतिम जन्म है।

११. परिव्राजक को इन दो अंतों (अतिसीमा) का सेवन नहीं करना चाहिए। वे दोनों अत कौन है ? पहला अत है कामवासनाओ में कामसुख के लिए लिप्त होना। यह अत अत्यंत हीन, ग्राम्य, अध्यात्ममार्ग से हटा देनेवाला, अनार्य्य और अनर्थकारी है। दूसरा अंत है शरीर को दंड देकर दुःख उठाना। यह भी अनार्यसेवित और अनर्थयुक्त है। इन दोनो अंतो को त्यागकर **मध्यमा प्रतिपदा** (अष्टांगिक मार्ग) का मार्ग ग्रहण करना चाहिए। यह मध्यमा प्रतिपदा चक्षुदायिनी और ज्ञानप्रदायिनी है। इससे उपशम, अभिज्ञान, संबोधन और निर्वाण प्राप्त होता है।

१—११ बु च (धर्मचक्रप्रवर्तन सूत्र)

अष्टांगिक मार्ग

१. सम्यक् दृष्टि, सम्यक् सकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि, यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है।

२. **सम्यक् दृष्टि,** दुःख का ज्ञान, दुःखोदय का ज्ञान, दुःख-निरोध का ज्ञान और दु.खनिरोध की ओर ले जानेवाले मार्ग का ज्ञान, इस आर्यसत्य-चतुष्टय के सम्यक् ज्ञान को सम्यक् दृष्टि कहते है।

३. **सम्यक् संकल्प,** निष्कर्मता-सबंधी, अर्थात् अनासक्ति संबंधी संकल्प, अहिंसासंबधी संकल्प, और अद्रोहसबंधी संकल्प को सम्यक् संकल्प कहते है।

४. **सम्यक् वचन,** असत्य वचन छोड़ना, पिशुन वचन अर्थात् चुगलखोरी छोड़ना, कठोर वचन छोड़ना और बकवाद छोड़ना सम्यक् वचन है।

५. **सम्यक् कर्मान्त** प्राणिहिंसा से विरत होना, बिना दी हुई वस्तु न लेना और कामोपभोग के मिथ्याचार (दुराचार) से विरत होना ही सम्यक् कर्मान्त है।

६. **सम्यक् आजीव,** आजीविका के मिथ्या साधनो को छोड़कर अच्छी सच्ची आजीविका से जीवन व्यतीत करना सम्यक् आजीव है।

७. **सम्यक् व्यायाम,** 'अकुशल' धर्म, अर्थात् पाप उत्पन्न न होने देने के लिए निश्चय करना, परिश्रम करना, उद्योग करना,

चित्त को पकड़ना और रोकना तथा कुशल धर्म, अर्थात् सत्कर्म की उत्पत्ति, स्थिति, विपुलता और परिपूर्णता के लिए निश्चय, उद्योग आदि करना ही सम्यक् व्यायाम है।

८. **सम्यक् स्मृति**, अशुचि, जरा, मृत्यु आदि दैहिक धर्मो का अनुभव करना तथा उद्योगशील अनुभवज्ञानयुक्त हो लोभ और मानसिक सताप को छोडकर जगत् में विचरना ही सम्यक् स्मृति है।

९. **सम्यक् समाधि**, कुशल धर्मो अर्थात् सन्मनोवृत्तियो में समाधान रखना ही सम्यक् समाधि है।

१०. इस सम्यक् समाधि की प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ ध्यानरूपी चार पगडडिया है।

पहले ध्यान में, वितर्क, विचार, प्रीति (प्रमोद) सुख और एकाग्रता का प्राधान्य होता है।

दूसरे ध्यान में, वितर्क और विचार का लोप हो जाता है; प्रीति, सुख और एकाग्रता इन तीन मनोवृत्तियो का ही प्राधान्य रहता है।

तीसरे ध्यान में, प्रीति का लय हो जाता है; केवल सुख और एकाग्रता की ही प्रधानता रहती है।

चौथे ध्यान में, सुख भी लुप्त हो जाता है; उपेक्षा और एकाग्रता का ही प्राधान्य रहता है।

*

११. अमृत की ओर ले जानेवाले मार्गो में अष्टागिक मार्ग परम **मंगलमय मार्ग** है।

*

१२. दुःख आर्यसत्य, दुःख-समुदय आर्यसत्य, दुःखनिरोध आर्यसत्य और दुःखनिरोधगामिमार्ग आर्यसत्य, इन चार आर्य-सत्यो का ज्ञान न होनें से युगानुयुगोतक हम सब लोग संसृति के पाश में बंधे पड़े थे। किन्तु अब इन आर्यसत्यों का बोध होने से हमने दुःख की जड़ खोद निकाली है, और हमारा पुनर्जन्म से छुटकारा हो गया है।

१.—१०. दी.नि. (महासतिपट्ठान सुत्त) ११. म. नि. (मागं-दिय सुत्तन्त) ११. दी. नि (महापरिनिब्बाण सुत्त)

जागृति के चार साधन

(चार स्मृत्युपस्थान)

१. शुद्ध होने के लिए, शोक और दु.ख से तरने के लिए, दौर्मनस्य (मानसिक दु ख) का नाश करने के लिए, सन्मार्ग प्राप्त करने के लिए और निर्वाणपद का अनुभव लेने के लिए चार स्मृति-उपस्थानो का मार्ग ही एकमात्र सच्चा मार्ग है।

२ चार स्मृति-उपस्थान ये है :—

(१) अपनी देह का यथार्थ रीति से अवलोकन करना,

(२) वेदना* का यथार्थ रीति से अवलोकन करना;

(३) चित्त का यथार्थ रीति से अवलोकन करना;

(४) मनोवृत्तियो का यथार्थ रीति से अवलोकन करना।

ये चार स्मृति-उपस्थान अर्थात् जागृति के श्रेष्ठ साधन है।

३. अरण्य में वृक्ष के नीचे अथवा एकान्त में पालथी मारकर गर्दन से कमरतक शरीर सीधा रखकर जो भिक्षु जागृत अन्त:-करण से श्वास खीचता है और प्रश्वास बाहर निकालता है, उसका आश्वास और प्रश्वास दीर्घ है या ह्रस्व इसकी जिसे पूर्ण स्मृति होती है, जागृतिपूर्वक जो अपने प्रत्येक आश्वास-प्रश्वास का अभ्यास करता है, वह अपने आश्वास-प्रश्वास को भली भाति जानता है।

---

*इन्द्रिय और विषय के एकसाथ मिलने के बाद जो दुःख-सुख आदि विकार उत्पन्न होता है।

जिस प्रकार वह आश्वास और प्रश्वास को सम्यक् रीति से जानता है, उसी प्रकार वह अपनी देह का यथार्थरीति से अवलोकन करता है।

४. जाते समय वह यह स्मरण रखता है कि 'मै जा रहा हूँ'; खड़ा होता है तो 'मैं खड़ा हूँ' यह स्मरण रखता है; जब बैठा होता है तब यह स्मरण रखता है कि 'मै बैठा हूं'; बिस्तरे पर पड़ा होता है तो 'मैं बिस्तरे पर पड़ा हुआ हूँ,' यह स्मरण रखता है। उसे देह की समस्त क्रियाओं का ज्ञान होता है।

इस तरह वह अपनी देह का यथार्थरीति से अवलोकन करता है।

५. वह अपनी देह का नख से शिखतक अवलोकन करता है। केश, रोम, नख, दन्त, त्वचा, मांस,स्नायु,अस्थि, मज्जा, मूत्राशय, कलेजा, यकृत, तिल्ली, फेफड़े, आंत,अतड़ियां, विष्ठा, पित्त, कफ, पीव, रक्त, पसीना, मेद, आंसू, चरबी, थूक, लार और मूत्र ऐसी-ऐसी अपवित्र चीजें इस देह में भरी हुई है!

कायानुपश्यी योगी अपनी देह में भरे हुए इन तमाम अपवित्र पदार्थों का उसी प्रकार एक-एक करके अवलोकन करता है, जिस प्रकार कि हम विविध अनाजों की पोटली को खोलकर देख सकते है, कि इसमें यह चावल ह, यह मूग है, यह उड़द है, यह तिल है और यह धान है।

६. वह कायानुपश्यी भिक्षु मरघट में जाकर अनेक तरह के मुर्दो को देखता है। कोई मुर्दा सूजकर मोटा हो गया है, किसी मुर्दे को कौओ, कुत्तों, और सियारोने खाकर और नोच-नाचकर छिन्न-भिन्न कर डाला है, तो किसी की केवल शंख-सी सफेद हड्डियां

हो पड़ी हुई है। ऐसे भयावने मुर्दों की तरफ देखकर वह यह विचार करता है कि 'मेरी देह की भी एक दिन यही गति होनी है। यह हो नहीं सकता, कि मेरी देह इस नश्वर स्थिति से मुक्त हो जाय।'

वह यह स्मरण रखता है कि यह देह जब पैदा हुई है तब एक-न-एक दिन तो इसका नाश होगा ही। देह नाशवान् है इसका उसे हमेशा स्मरण रहता है।

वह अनासक्त हो जाता है। दुनिया में किसी भी वस्तु की उसे आसक्ति नही रहती।

इस प्रकार वह अपनी देह का यथार्थरीति से अवलोकन करता है।

७. कोई भिक्षु अपनी वेदनाओ का यथार्थरीति से अवलोकन करता है। जब वह सुखकारी वेदना का अनुभव करता है, तो वह समझता है कि मैं सुखद वेदना का अनुभव कर रहा हूँ।

और जब दु खकारी वेदना का अनुभव करता है, तब वह समझता है कि मैं दुःखद वेदना का अनुभव कर रहा हूँ।

जब वह सुख-दुःखरहित वेदना का अनुभव करता है, तब वह समझता है कि मैं सुख-दुःखरहित वेदना का अनुभव कर रहा हूँ।

उसे इस बात का स्मरण रहता है कि वह इस वेदना का लोभ से अनुभव कर रहा है या अलोभ से।

इस प्रकार वह आन्तरिक और बाह्य वेदना का यथार्थ रीति से अवलोकन करता है। वह देखता है कि वेदना जब पैदा हुई है तब नाश उसका अवश्य होगा।

उसे यह स्मरण रहता है कि उसके अंग में वेदना है।

स्मृति और ज्ञान प्राप्त करने के लिए वह वेदनानुपश्यी योगी अनासक्त हो जाता है। इस लोक की किसी भी वस्तु में वह आसक्ति नहीं रखता।

८. कोई भिक्षु अपने चित्त का यथार्थरीति से अवलोकन करता है। मेरा चित्त सकाम है या निष्काम, सद्वेष है या विगत-द्वेष, समोह है या वीतमोह, संक्षिप्त है या विक्षिप्त, समाहित (एकाग्र) है या असमाहित, विमुक्त है या अविमुक्त, आदि सभी अवस्थाओं को वह जानता है। इस प्रकार उसे अपने और पराये चित्त का परिज्ञान हो जाता है।

वह जानता है कि चित्त का स्वभाव चंचल है। चित्त ऐसा क्यो है, इसकी उसे स्मृति होती है।

केवल स्मृति और ज्ञान प्राप्त करने के लिए वह किसी भी वस्तु में आसक्ति नही रखता। इस प्रकार वह चित्तानुपश्यी भिक्षु चित्त का यथार्थरीति से अवलोकन करता है।

९. कोई भिक्षु अपनी मनोवृत्तियों का यथार्थरीति से अवलोकन करता है। वह इस बात की ठीक-ठीक शोध करता है कि उसके अंत:करण मे कामविकार, द्वेषवृद्धि, आलस्य, अस्वस्थता और संशय, ये ज्ञान के पांच आवरण हैं या नही।

इन आवरणों की उत्पत्ति कैसे होती है, इनके उत्पन्न होने पर इनका विनाश किस तरह किया जाता है, और इनके फिर से उत्पन्न न होने का क्या उपाय है, इस सब को वह जानता है।

इस प्रकार इन पांच मनोवृत्तियों का वह यथार्थरीति से अवलोकन करता है।

१०. फिर वह पांच स्कन्धों का यथार्थरीति से अवलोकन

करता है। रूप, वेदना, संज्ञा, सस्कार और विज्ञान इन पांच स्कन्धो का उदय और अस्त कैसे होता है यह वह जानता है।

इस प्रकार वह धर्मानुपश्यी भिक्षु आभ्यंतर और बाह्य स्कन्धों का यथार्थरीति से अवलोकन करता है।

११. फिर वह चक्षु, रूप इत्यादि आध्यात्मिक और बाह्य आयतनो का यथार्थरीति से अवलोकन करता है। चक्षु और रूप, कर्ण और शब्द, नासा और गंध, त्वचा और स्पर्श, मन और मनोवृत्ति इनके संयोग से कौन-कौन-से सयोजन पैदा होते है, और उनके उत्पन्न होने पर उन सयोजनो का नाश कैसे होता है, और सयोजन फिर उत्पन्न न हो इसका क्या उपाय है इस सबको वह जानता है।

१२. फिर वह सात बोध्यगो का यथार्थरीति से अवलोकन करता है। स्मृति, धर्मप्रविचय (धर्मसचय) वीर्य (उद्योग) प्रीति, प्रश्रब्धि (शांति), समाधि और उपेक्षा ये सात धर्म मेरे अत.करण में है या नही यह वह जानता है। यदि नही है तो ये सबोध्यग किस प्रकार उत्पन्न किये जा सकते हैं, और उत्पन्न हुए सबोध्यगो को भावना के द्वारा किस प्रकार पराकाष्ठातक पहुँचाया जा सकता है, यह सब वह जानता है।

इस प्रकार वह भिक्षु आध्यात्मिक और बाह्य मनोवृत्तियो का यथार्थरीति से अवलोकन करता है।

१३. इसके अतिरिक्त वह भिक्षु चार आर्यसत्यो का यथार्थ रीति से अवलोकन करता है।

यह दु ख है, यह दु ख का समुदय है, यह दुःख का निरोध है और यह दु ख-निरोध का मार्ग है, यह वह यथार्थरीति से जानता है।

इस प्रकार वह भिक्षु आध्यात्मिक और बाह्य मनोवृत्तियों का यथार्थरीति से अवलोकन करता है।

१४. इन चार स्मृति-उपस्थानों की ऊपर कहे अनुसार सात वर्षतक भावना करने से भिक्षु को 'अर्हत्पद' की प्राप्ति हो जायगी। अधिक 'नही तो, वह 'अनागामी' तो हो ही जायगा, उसे फिर इस लोक में जन्म नही लेना पड़ेगा।

१५. सात वर्ष जाने दो, ऊपर कहे अनुसार जो भिक्षु इन चार स्मृति-उपस्थानो की भावना छै वर्ष, पाच वर्ष. चार वर्ष, तीन वर्ष, दो वर्ष, एक वर्ष, इतना भी तो नही, तो सात मास, छै मास, पाच मास, चार मास, तीन मास, दो मास, एक मास या सात ही दिन यथार्थरीति से करेगा, तो उसे 'अर्हत्पद' की प्राप्ति हो जायगी—और नही तो वह अनागामी तो हो ही जायगा।

१६. इन चार स्मृति-उपस्थानों का मार्ग शोक और कष्ट की विशुद्धि के लिए, दुःख और दौर्मनस्य के अतिक्रमण के लिए, सत्य की प्राप्ति के लिए और निर्वाण के साक्षात्कार के लिए **एकायन मार्ग** (निश्चित मार्ग) है।

१—१६. म. नि. (सतिपट्ठान सुत्तन्त)

सप्त धर्मरत्न

१. धर्म के इन सात रत्नो को तुम लोग अवश्य धारण करो—(१) स्मृत्युपस्थान, (२) सम्यक् प्रधान (प्रयत्न) (३) ऋद्धिपाद, (४) इन्द्रिय, (५) बल, (६) बोध्यग, और (७) मार्ग।

२. **स्मृत्युपस्थान** चार प्रकार का है—(१) शरीर अपवित्र है, (२) संसार की सभी वेदनाएँ दु खरूप है, (३) चित्त अनित्य है, और (४) संसार के समस्त पदार्थ अलीक अर्थात् क्षणिक है। इन चारो के स्मरण और भावना को चतुर्विध स्मृत्युपस्थान कहते है।

३. **सम्यक् प्रधान** चार प्रकार का है—(१) अर्जित पुण्य का संरक्षण, (२) अलब्ध पुण्य का उपार्जन, (३) पूर्व सचित पाप का परित्याग, और (४) नूतन पापों की अनुत्पत्ति का प्रयत्न।

४. **ऋद्धिपाद** अर्थात् असाधारण क्षमता की प्राप्ति के लिए (१) दृढ सकल्प, (२) चिता अर्थात् उद्योग, (३) उत्साह और (४) आत्मसंयम करना।

५. इन्द्रियां पाच प्रकार की है—(१) श्रद्धा, (२) समाधि, (३) वीर्य, (४) स्मृति, और (५) प्रज्ञा।

६. बल भी पांच प्रकार का है—(१) श्रद्धाबल, (२) समाधिबल, (३) वीर्यबल, (४) स्मृतिबल, और (५) प्रज्ञाबल।

७. बोध्यंग सात प्रकार का है—(१) स्मृति, (२) धर्म-प्रविचय (धर्मान्वेषण) या पुण्य, (३) वीर्य, (४) प्रीति, (५) प्रश्नब्धि अर्थात् शांति, (६) समाधि, और (७) उपेक्षा।

८. मार्ग आठ प्रकार का है—(१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक् वचन, (४) सम्यक् कर्मान्त, (५) सम्यक् आजीव, (६) सम्यक् व्यायाम (७) सम्यक् स्मृति, और (८) सम्यक् समाधि।

९. इन सैंतीस पदार्थों को लेकर मैंने धर्म की व्यवस्था की है। इन्हे मैंने 'सप्तत्रिंशत् शिक्षमाण धर्म' कहा है।

भिक्षुओ ! तुम्हारा यह कर्तव्य है कि इस धर्म का श्रवण, मनन और निदिध्यासपूर्वक जगत् मे प्रचार करो।

१—९. दी नि. (महापरिनिब्बाण सुत्त)

ब्रह्म-विहार

१. मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा—इन चार मनोवृत्तियो को 'ब्रह्मविहार' कहते है ।

२. मैत्रीपूर्ण चित्त से, करुणापूर्ण चित्त से, मुदितापूर्ण चित्त से और उपेक्षापूर्ण चित्त से जो भिक्षु चारो दिशाओ को व्याप्त कर देता है, सर्वत्र सर्वात्मरूप होकर समस्त जगत् को अवैर और अद्वेषमय चित्त से भर देता है उसे मै 'ब्रह्मप्राप्त' भिक्षु कहता हूँ ।

*

३. मैत्रीचित्तविमुक्ति की प्रेमपूर्वक इच्छा करनें से, भावना करने से, अभिवृद्धि करने से, स्थापना करने से, उसका अनुष्ठान करने मे और उसे उत्साहपूर्वक अगीकर करने से मनुष्य को ये ग्यारह लाभ होते है :—

वह सुखपूर्वक सोता है; सुख से जागता है; बुरे स्वप्न नही देखता; सब का प्रिय होता है, भूत-पिशाचो का भय नही रहता; देवता उसकी रक्षा करते है; अग्नि, विष या हथयार उस पर कोई असर नही कर सकते; चित्त का तुरत समाधान हो जाता है; मुख की कान्ति अच्छी रहती है; शाति से मरता है; और, निर्वाण न भी मिले, तो भी मृत्यु के पश्चात् ब्रह्मलोक को तो जाता ही है ।

*

४. विचारपूर्वक किये हुए कर्मों का फल विना भोगे नष्ट नही होता। इस लोक में अथवा परलोक में कृतकर्मो का फल भोगना ही पड़ता है। फिर इन कर्मों को जाने विना दु ख नष्ट नही होता। अतः आर्यश्रावक (गृहस्थ) लोभ से, द्वेप से और मोह से विमुक्त होकर सचेत अंत करण के द्वारा मैत्रीयुक्त चित्त से, करुणायुक्त चित्त से, मुदितायुक्त चित्त से और उपेक्षायुक्त चित्त से चारो दिशाओं को अभिव्याप्त कर देता है; अखिल जगत् को अवैर और द्वेपरहित मैत्रीसहगत चित्त से अभिव्याप्त कर देता है।

वह समझता है कि पूर्व में इन भावनाओं के न करनें से मेरा चित्त संकुचित था। पर अव उत्तम रीति से इस मैत्री भावना, इस करुणा भावना, इस मुदिता भावना और इस उपेक्षा भावना के करने से वह असीम और अनंत हो गया है। जो भी मर्यादित कर्म मेरे हाथ से हुआ होगा, वह अव इन अमर्यादित भावनाओं के कारण शेष नही रह सकता, वह इन भावनाओ के सामने टिक नही सकता।

५. मनुष्य यदि छुटपन से ही मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षाचित्तविमुक्ति की भावना करे, तो उसके हाथ से पाप-कर्म होगा ही क्यों? और वह पाप नही करेगा, तो फिर उसे दुःख क्यों भागना पड़ेगा?

६. यह मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षाचितविमुक्ति की भावना क्या पुरुष क्या स्त्री सभी को करनी चाहिए।

१—२ अं. नि. (चतुक्कनिपात) ३ अं. नि. (मेत्तसुत्त) ४—६. अं. नि. (दसक निपात)

सत्य

१. असत्यवादी नरकगामी होते है, और वे भी नरक मे जाते है, जो करके 'नही किया' कहते है ।

२. जो मिथ्याभाषी है, वह मुडित होने मात्र से श्रमण नही हो जाता ।

*

३. जिसे जान-बूझकर झूठ बोलने में लज्जा नही, उसका साधुपना औंधे घड़े के समान है; साधुता की एक बूद भी उसके हृदय-घट के अदर नही ।

४. जिसे जान-बूझकर झूठ बोलने में लज्जा नही,उससे कौन-सा पाप-कर्म करने को बचा ? इसलिए तू यह हृदय में अकित कर ले, कि मैं हँसी-मजाक में भी कभी असत्य नही बोलूगा ।

*

५. जितनी हानि शत्रु शत्रु की, और वैरी वैरी की करता है मिथ्या मार्ग का अनुगमन करनेवाला चित्त उससे कही अधिक हानि पहुँचाता है ।

*

६. सभा में, परिषद् में अथवा एकांत में किसी से झूठ न बोले; झूठ बोलने के लिए दूसरों को प्रेरित न करे, न झूठ बोलने-वाले को प्रोत्साहन दे—इसलिए असत्य का सर्वांश में परित्याग कर देना चाहिए ।

*

७. अगर कोई हमारे विरुद्ध झूठी गवाही देता है, तो उससे हमे अपना भारी नुकसान हुआ मालूम होता है। इसी तरह अगर असत्य भाषण से मै दूसरों की हानि करूँ, तो क्या वह उसे अच्छा लगेगा ? ऐसा विचार करके मनुष्य को असत्यभाषण का परित्याग कर देना चाहिए, और दूसरो को भी सत्य बोलने का उपदेश करना चाहिए। उसे तो सदा ईमानदारी की ही सराहना करनी चाहिए।

*

८. असत्य का कदापि आश्रय न ले। न्यायाधीशने गवाही देने के लिए बुलाया हो तो वहां भी जो देखा है उसी को कहे, कि मैंने देखा है; और जो बात नही देखी, उसे 'नही देखी' ही कहे।

*

९. सत्यवाणी ही अमृतवाणी है; सत्यवाणी ही सनातनधर्म है। सत्य, सदर्थ और सद्धर्म पर संतजन सदैव दृढ़ रहते है।

१०. सत्य एक ही है, दूसरा नही। सत्य के लिए बुद्धिमान् लोग विवाद नही करते।

११. ये लोग भी कैसे है ! सांप्रदायिक मतो में पड़कर अनेक तरह की दलीले पेश करते है, और सत्य और असत्य दोनों का ही प्रतिपादन कर देते है ! अरे, सत्य तो जगत् में एक ही है, अनेक नही।

१२. जो मुनि है, वह केवल सत्य को ही पकड़कर और दूसरी तमाम वस्तुओं को छोड़कर संसार-समुद्र के तीर पर आ जाता है। उसी सत्यनिष्ठ मुनि को हम शात कहते है।

१—२. ध. प. (निरय वग्गो) ३—४ बु. च. (राहुलोवाद सुत्त) ५. ध. प. (चित्त वग्गो) ६. सु. नि. (धम्मिक सुत्त) ७. बु, ली. सं. (पृष्ठ २५५) ८. म. नि. (सालेय्यक सुत्त) ९. सु नि. (सुभासित सुत्त) १०-११. सु. नि. (चूलवियूह सुत्त). १२. सु. नि. (अत्तदंड सुत्त)

अहिंसा

१. 'जैसा मैं हूँ वैसे ही वे हैं और जैसे वे हैं वैसा ही मैं हूँ' इस प्रकार अपने उदाहरण से (सर्वात्मैक्य) समझकर न किसी को मारे, न मारने को प्रेरित करे।

*

२. जहा मन हिंसा से मुडता है, वहा दुःख अवश्य ही शान्त हो जाता है।

*

३. अपनी प्राण-रक्षा के लिए भी जान-बूझकर किसी प्राणी का वध न करे।

*

४. मनुष्य यह विचार किया करता है कि मुझे जीने की इच्छा है, मरने की नहीं; सुख की इच्छा है, दुःख की नहीं। यदि मैं मेरी ही तरह सुख की इच्छा करनेवाले प्राणी को मार डालू तो क्या यह बात उसे अच्छी लगेगी? इसलिए मनुष्य को प्राणिघात से तो विरत ही हो जाना चाहिए, और उसे दूसरो को भी हिंसा से विरत कराने का प्रयत्न करना चाहिए।

*

५. वैरियो के प्रति वैररहित होकर, अहा! हम कैसा आनन्दमय जीवन बिता रहे है, वैरी मनुष्यो के बीच अवैरी होकर विहार कर रहे है!

*

६. पहले तीन ही रोग थे—इच्छा, क्षुधा और बुढ़ापा। पशु की हिंसा से बढ़ते-बढ़ते ये अट्ठानवे हो गये!

ये याजक, ये पुरोहित निर्दोष पशुओ का वध कराते हैं, धर्म का ध्वंस करते हैं। यज्ञ के नाम पर की गई यह पशु-हिंसा निश्चय ही निन्दित और नीच कर्म है। प्राचीन पडितोंने ऐसे याजकों की निन्दा ही की है।

*

७. पहले के ब्राह्मण यज्ञ में गाय का हनन नही करते थे। जैसे माता, पिता, भ्राता और दूसरे बन्धु-बान्धव हैं, वैसे ही ये गायें हमारी परम मित्र है। ये अन्न, बल, वर्ण और सुख देनेवाली हैं।

८. किन्तु मानुष भोगों को देखकर कालान्तर मे ये ब्राह्मण भी लोभग्रस्त हो गये, उनकी भी नीयत बदल गई। मंत्रों को रच-रचकर वे इक्ष्वाकु (ओक्काक) राजा के पास पहुँचे, और उसके धनैश्वर्य की प्रशसा करके उसे पशु-यज्ञ करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने उससे कहा, 'जैसे पानी, पृथिवी, धन और धान्य प्राणियों के उपभोग की वस्तुएँ हैं, उसी प्रकार ये गायें भी मनुष्यों के लिए उपभोग्य हैं। अतः तू यज्ञ कर।

९. तब उन ब्राह्मणो से प्रेरित होकर रथर्षभ राजाने लाखो निरपराध गायों का यज्ञ में हनन किया। जो बेचारी न पैर से मारती हैं, न सीग से, जो भेड़ की नाईं सीधी और प्यारी हैं, और जो घडाभर दूध देती हैं, उनके सीग पकड़कर राजाने शस्त्र से उनका वध किया।

१०. यह देखकर देव, पितर, इन्द्र, असुर और राक्षस चिल्ला उठे, 'अधर्म हुआ, अधर्म हुआ, जो गाय के ऊपर शस्त्र गिरा!'

---

१. सु. नि. (नालक सुत्त) २. ध प (ब्राह्मण वग्गो) ३ बु. च. (सोह सुत्त) ४. बु. ली. सं. (पृष्ठ २५५) ५. ध. प. (सुख वग्गो) ६—१०. बु. च. (ब्राह्मण धम्मिक सुत्त)

अमृत की खेती

१. मैं भी कृषक हूँ। मेरे पास श्रद्धा का बीज है। उस पर तपश्चर्या की वृष्टि होती है।

प्रज्ञा मेरा हल है। ही (पाप करने में लज्जा) की हरिस, मन की जोत और स्मृति की फाल से मैं अपना खेत (जीवन-क्षेत्र) जोतता हूँ।

सत्य ही मेरा खुरपा है। मेरा उत्साह ही मेरा बैल है और यह योगक्षेम मेरा अधिवाहन है। इस हल को मैं नित्य निरंतर निर्वाण की दिशा में चलाया करता हूँ।

२. मैं यही कृषि करता हूँ। इस कृषि से कृपक को अमृत-फल मिलता है, और वह समस्त दुःखो से मुक्त हो जाता है।

१—२. सु. नि. (कसिभारद्वाज सुत्त)

मैत्री-भावना

१. शांतपद के जिज्ञासु एवं आत्महित कुशल मनुष्य का कर्तव्य यह है कि उसे सहनशील, सरलातिसरल, मधुरभाषी, मृदु और निरहंकारी बनना चाहिए।

२. हमें कोई ऐसा क्षुद्र आचरण नही करना चाहिए, जिससे कि सुज्ञ जन हमें दोष दें। हमें सदा यही भावना करनी चाहिए कि जगत् के समस्त प्राणी सुखी, सक्षेम और सानद रहे।

३. चर हों या स्थावर, बड़े हों या छोटे, दृष्ट हों या अदृष्ट, हम से दूर रहते हो या पास, जगत् में जितने भी प्राणी हों वे सब आनंदित रहें।

४. न हम एक दूसरे को धोखा दें, न किसी जगह एक दूसरे का अपमान करें, और न खीझ या द्वेषबुद्धि से एक दूसरे को दु:ख देने की मन में इच्छा रखे।

५. माता जिस प्रकार अपने स्नेह-सर्वस्व पुत्र को अपना जीवन खर्च करके भी पालती है, उसी प्रकार समस्त प्राणियों के प्रति हमें असीम प्रेम रखना चाहिए।

६. सर्व प्राणियों के प्रति हमें ऊपर, नीचे और चारों ओर असंबाध, अवैर और असपत्न मैत्री की असीम भावना बढ़ानी चाहिए।

७. खड़े हों तब, चलते हो तब, बैठे हों तब या बिस्तरे पर पड़े हो तब, जबतक नीद न आजाय, तबतक हमें इस मैत्री भावना की स्मृति स्थिर रखनी चाहिए।

इसी अवस्था को इस लोक में 'ब्राह्म जीवन' कहते हैं।

*

८. जिस मनुष्य के मन से लोभ, द्वेष और मोह ये तीन मनोवृत्तिया नष्ट हो गई हैं, वही चारो दिशाओ में प्राणिमात्र के प्रति मैत्री भाव प्रसारित कर सकता है। अपने मैत्रीमय चित्त से चारो दिशाओ में बसनेवाले समस्त प्राणियो पर वह प्रेम की रस-वर्षा करता है। करुणा, मुदिता और उपेक्षा की भावनाओ का उसे अनायास ही सुलाभ हो जाता है।

१—७ सु नि (मेत्त सुत्त) ८ अ नि (कालाम सुत्त)

अक्रोध

१. 'मुझे अमुक मनुष्यने गाली दी, अमुकने मुझे मारा, अमुकने मुझे पराजित किया, अमुकने मुझे लूट लिया' इस प्रकार के विचार की जो लोग मन में गांठ बांध लेते हैं, और वैर भँजानें की इच्छा रखते हैं, उनका वैरभाव कभी शांत नही होता।

२. वैर तो उन्हीका शात होता है, जो इस प्रकार के विचार हृदय से निकाल देते हैं कि 'मुझे अमुकने गाली दी, अमुकने मुझे मारा, अमुकने मेरा पराभव किया, अमुकनें मुझे लूट लिया।'

३. वैर से वैर कभी शात नही होता। वैर प्रेम से ही शांत होता है। यही सनातनधर्म है।

*

४. 'दूसरे भले ही न समझें, पर हम तो इस कलह से दूर ही रहेंगे,' ऐसा जो समझते है उनका द्वेष या कलह नष्ट हो जाता है।

५. लोगो की हड्डियां तोड़ डालनेवाले, दूसरों का प्राण ले लेनेवाले, गाय, घोड़ा, धन-सपत्ति आदि का हरण करनेवाले और राष्ट्र में विप्लव मचानेवाले लोग भी अपना संघ बना लेते हैं, उनमें भी एका हो जाता है; तब तुम्हारा संघ क्यो नही बन सकता ?

*

६. किसी से कटु वचन न बोलो। यदि बोलोगे, तो वह भी तुम से वैसा ही कटु वचन बोलेगा। झगडे से दु.ख बढ़ता ही है। कटु वचन बोलने से, बदले में, तुम्हे दण्ड मिलेगा। टूटा हुआ कांसा जैसे नि शब्द रहता है, उसी तरह अगर तुम स्वय चुप रहोगे, तो तुम निर्वाणपद प्राप्त कर लोगे; तुम्हे कलह नही सतायगा।

*

७. क्षमा के समान इस जगत् में दूसरा तप नही।

*

८. जो चढे हुए क्रोध को चलते हुए रथ की तरह रोक लेता है, उसीको मै सच्चा सारथी कहूँगा; और लोग तो केवल लगाम पकड़नेवाले है।

९. अक्रोध से क्रोध को जीते, भलाई से बुराई को जीते, कृपण को दान से जीते, और झूठ बोलनेवाले को सत्य से जीते।

*

१०. क्रोध करनेवाले के ऊपर जो क्रोध करता है, उसका खुद उससे अहित होता है; पर जो क्रोध का जवाब क्रोध से नही देता, वह एक भारी युद्ध जीत लेता है। प्रतिपक्षी को क्रोधान्ध देखकर जो अत्यत विवेक के साथ शांत हो जाता है, वह अपना और पराया दोनो का ही हित-साधन करता है।

*

११. तुझे कोई गाली दे, और गाली ही नही, तेरे गाल पर कोई थप्पड़ मार दे, या पत्थर या हथियार से तेरे शरीर पर कोई प्रहार करे, तो भी तेरे चित्त में विकार नही आना चाहिए, तेरे

मुहँ से गंदे शब्द नही निकलने चाहिए, तेरे मन में उस समय भी तेरे शत्रु के प्रति अनुकंपा और मैत्री का भाव रहना चाहिए, और किसी भी हालत में क्रोध नहीं आना चाहिए।

१२. मनुष्य तभीतक शांत और नम्र दीखता है, जबतक कोई उसके विरुद्ध अपशब्द नही कहता। पर जब उसे अपशब्द या निंदा सुनने का प्रसंग आता है, तभी इस बात की परीक्षा हो सकती है, कि वह वास्तव में शांत और नम्र है या नही।

१३. जो धर्म के गौरव से धर्म को पूज्य मानकर शांत और नम्र होता है उसी को सच्चा शांत और उसीको सच्चा नम्र समझना चाहिए। अपना मतलब साधने के लिए कौन शांत और नम्र नही बन जाता?

१४. कोई मौके से बोलता है तो कोई बेमौके से बोल देता है; कोई उचित बात कहता है तो कोई अनुचित बात कह देता है; कोई मधुर वचन बोलता है तो कोई कटु वचन बोलता है; कोई हित की बात कहता है तो कोई अहित की बात कहता है; कोई हितबुद्धि से बोलता है तो कोई द्वेषबुद्धि से बोलता है। इन सब प्रसंगों पर तुम्हारा चित्त विकार के वश नही होना चाहिए, तुम्हारे मुहँ से गंदे शब्द नही निकलने चाहिए, तुम्हारे अंतःकरण में दया और मैत्री रहनी चाहिए, क्रूरता और द्वेष नही; और तुम्हें ऐसा अभ्यास करना चाहिए कि जिस मनुष्यने तुम्हारे विरुद्ध कोई बात कही है, उसे ही आधार बनाकर तुम समस्त संसार पर मैत्री भावना की सतत वर्षा कर सको।

१५. यदि कोई टोकरी और कुदाली लेकर यह कहे कि 'इस तमाम पृथिवी को मैं खोदकर फेंक दूगा!' दूसरा मनुष्य लाख

का रग, हल्दी का रंग और मजीठ का रंग लेकर कहे कि 'इस समस्त आकाश को मै रँग डालूगा !' और तीसरा मनुष्य घास की पूली सुलगाकर कहे कि 'इस गगा नदी को मै भस्म कर डालूगा !' तो उन मनुष्यो के प्रयत्नो का पृथिवी, आकाश या गगा नदी पर कोई असर पडने का नही। इसी प्रकार दूसरे लोगों के बोलने का तुम्हारे हृदय पर जरा भी बुरा असर नही पडना चाहिए।

१६. अगर चोर और लुटेरे आकर तुम्हारे शरीर के अग आरे से काटने लग जायें, और उस अवसर पर तुम्हारे मन में उन लुटेरो के प्रति क्रोध या द्वेप आ जाय, तो तुम मेरे सच्चे अनुयायी नही कहे जा सकते।

ऐसे प्रसग पर भी तुम्हारे मन में द्वेप नही आना चाहिए, तुम्हारे मुहँ से बुरे शब्द नही निकलने चाहिए, तुम्हारे अंत:करण में दया और मैत्री की भावना रहनी चाहिए, और अपने शत्रु को आधारस्वरूप मानकर समस्त ससार पर तुम्हे निस्सीम मैत्री भावना की रसवर्पा करनी चाहिए।

१—३ ध प (यमक वग्गो) ४—५. म नि (उपकिलेस सुत्तन्त) ६ ध प (दण्ड वग्गो) ७ ध प. (बुद्ध वग्गो). ८—६. ध. प. (क्रोध वग्गो) १० ब्रु. ली. सा. स (पृष्ठ ३०६) ११—१६. म नि (ककचूपम सुत्तन्त)

तृष्णा

१. प्रमाद-रत मनुष्य की तृष्णा लता की भाति बढ़ती ही जाती है। वह एक वस्तु से दूसरी वस्तुतक इस तरह दौड़ता रहता है, जैसे वन मे बदर एक फल के बाद दूसरे फल की इच्छा करता है।

२. यह जहरीली तृष्णा जिसे जकड़ लेती है, उसके शोक वीरन घास की तरह बढ़ते ही जाते हैं।

३. इस दुर्जेय तृष्णा को जगत् में जो काबू में कर लेता है, उसके शोक इस प्रकार झड़ जाते है, जिस प्रकार कमल के पत्ते पर से जल के विंदु।

४. जैसे जड़ के दृढ़ होने के कारण और उसके नष्ट न होने से वृक्ष कटा हुआ भी फिर से उग आता है, वैसे ही जबतक तृष्णा की जड़ न कटे, तृष्णारूपी अनुशय (मल) नष्ट न हो, तबतक दु.ख बारबार पैदा होता ही रहेगा।

५. ये रागयुक्त संकल्प सोतो के रूप मे चारो ओर बह रहे है, जिनके कारण तृष्णारूपी लता अकुरित होती और जड़ पकड़ती रहती है। जहां भी कही तुम यह लता जड़ पकड़ती हुई देखो, वही प्रज्ञा की कुल्हाड़ी से उसकी जड़ काट डालो।

६. जाल में फँसे हुए खरगोश की तरह तृष्णा के पीछे पड़े हुए ये प्राणी इधर-उधर चक्कर काटते रहते हैं। संयोजनों अर्थात्

मन के बधनो मे जकड़े हुए ये मूढ़ लोग वारवार दु ख और क्लेश पाते हैं ।

७. ये जो लोहे, लकडी या रस्सी के वधन हैं, इन्हें बुद्धिमान् लोग दृढ़ वधन नही कहते। इनकी अपेक्षा अधिक दृढ़ वंधन तो वह चिंता है, जो मणि, कुंडल, पुत्र और कलत्र के लिए की जाती है।

८. जो मनुष्य राग मे रत रहते हैं वे अपनी ही बनाई धारा मे इस प्रकार वह जाते हैं, जैसे मकड़ी अपने ही रचित जाल में फँस जाती है। धीर पुरुष इस धारा को काटकर समस्त आकांक्षाओ और दु खो से रहित हो जाते हैं।

९. जो प्राणी तर्क-वितर्क आदि सशयो से पीडित है, और तीव्रराग में फँसा हुआ है तथा सदा सुख-ही-सुख की अभिलापा करता है, उसकी तृष्णा बढ़ती ही जाती है, और वह प्रतिक्षण अपने लिए और भी मजबूत वधन तैयार करता जाता है।

१०. जिसकी तृष्णा नष्ट हो गई, राग से जो विमुक्त हो गया, जो शब्द और उसका अर्थ जानता है और जिसे अक्षरो के क्रम का ज्ञान है, उसे 'महाप्राज्ञ' कहते हैं। निश्चय ही वह अतिम शरीरवाला है, अर्थात् वह निर्वाण प्राप्त कर लेगा।

११. ससार-समुद्र के पार जाने का प्रयत्न न करनेवाले मूर्ख मनुष्य को ये ऐहिक भोग नष्ट कर देते हैं। भोग की तृष्णा में फँसकर वह दुर्बुद्धि मनुष्य अपने आपका ही हनन करता है।

*

१२. तृष्णा का साथी वनकर वारवार जन्म लेनेवाला मनुष्य मनुष्यत्व अथवा मनुष्येतर भाव को प्राप्त करके ससार-समुद्र को पार नही कर सकता।

१३. 'तृष्णा से दुःख की उत्पत्ति होती है'—तृष्णा में यह दोष देखकर भिक्षु को चाहिए कि वह वीततृष्ण, आदानविरहित (अपरिग्रही) और स्मृतिमान् होकर प्रव्रज्या लेले।

१४. भवतृष्णा का उच्छेद कर देनेवाले शांतचित्त भिक्षु की जन्मपरंपरा नष्ट हो जाती है, उसका पुनर्जन्म नही होता।

*

१५. मनुष्य जितना ही कामादि का सेवन करता है, उतनी ही उसकी तृष्णा बढ़ती जाती है। काम के सेवन में क्षणमात्र के लिए ही रसास्वाद मालूम देता है।

१—११. ध. प. (तण्हा वग्गो) १२—१४. सु. नि. (द्वयतानुपस्सना सुत्त) १५. म. नि. (मागंदिय सुत्तन्त)

अंतःशुद्धि

१. हे ब्राह्मण ! इन लकडियो को जलाकर तू क्यों शुद्धि मानता है ? यह शुद्धि नही है । यह तो एक बाह्य वस्तु है । पडित लोग इसे शुद्धि नही कहते ।

मै यह 'दारु-दाह' छोडकर अपने अदर ही जोति जलाता हूं । नित्य अग्निवाला, नित्य एकान्तचित्तवाला होकर मै ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करता हू । यही सच्ची शुद्धि है ।

२. हे ब्राह्मण ! तेरा यह अभिमान खरिया का भार है, क्रोध धुआ है, मिथ्या भाषण भस्म है, जिह्वा स्रुवा है और हृदय जोति का स्थान है । आत्मा का दमन करने पर ही पुरुष को यह 'अन्तर्ज्योति' प्राप्त होती है । यही सच्ची आत्म-शुद्धि है ।

३. हे ब्राह्मण ! शीलरूपी घाटवाले निर्मल धर्मसरोवर में, जिसकी सतजन प्रशंसा करते है, नहाकर कुशल जन शुद्ध होते है । वे शरीर को विना भिगोये ही पार उतर जाते है ।

४. श्रेष्ठ शुद्धि की प्राप्ति सत्य, धर्म, सयम और ब्रह्मचर्य पर निर्भर करती है ।

*

५. अरे मूर्ख ! यह जटा-जूट के रखा लेने से तेरा क्या बनेगा, और मृगचर्म पहनने से क्या ? अतर तो तेरा रागादि मलो से परिपूर्ण है, बाहर तू क्या धोता है ?

*

६. बाहुका, अधिकक्क, गया और सुंदरिका में, सरस्वती और प्रयाग तथा बाहुमती नदी मे कलुषित कर्मोवाला मूढ़ चाहे नित्य ही नहावे, पर शुद्ध नही होगा। क्या करेगी सुंदरिका, क्या करेगा प्रयाग और क्या करेगी यह बाहुलिका ? ये सब तीर्थ उस कृतकिल्विष (पापी) दुष्ट मनुष्य को शुद्ध नही कर सकते।

७. शुद्ध मनुष्य के लिए सदा ही फल्गू नदी है, सदा ही उपोसथ (व्रत का दिन) है। शुद्ध और शुचिकर्मा के व्रत तो सदा ही पूरे होते रहते हैं।

८. तू तो समस्त प्राणियो की कल्याण-कामना कर, यही तेरा तीर्थस्थान है। यदि तू असत्य नही बोलता, यदि तू प्राणियो की हिंसा नही करता, यदि तू बिना दिया हुआ नही लेता, और यदि तू श्रद्धावान् तथा मत्सर-रहित है, तो फिर गया जाकर क्या करेगा ? तेरे लिए तो यह क्षुद्र जलाशय ही गया है।

*

९. पानी से शुद्धि नही होती। जो सत्यनिष्ठ और धर्मवान् हैं वही शुचि है,, वही शुद्ध है।

*

१०. अतःशुद्धि न दृष्टि से, न श्रुति से और न ज्ञान से ही प्राप्त होती है। शीलव्रत पुरुष भी आध्यात्मिक शुद्धि नही दिला सकता; पर इतने से यह न समझना कि ये निरर्थक हैं और इनका त्याग करने से शुद्धि प्राप्त होती है। जबतक सम, विशेष और हीन का भाव बना रहेगा, तबतक शुद्धि दुर्लभ है।

*

११. जो तृष्णा के बंधन से नही छूटा उस मनुष्य की शुद्धि

न नग्न रहने से, न जटा रखाने से, न पंक लपेटने से, न भस्म रमाने से और न विभिन्न आसनो के लगाने से ही होती है।

❋

१२. तू अपने किये पापो से अपने को ही मलिन बना रहा है। पाप छोडदे तो स्वय ही शुद्ध हो जायगा। शुद्धि और अशुद्धि अपनी ही है। अन्य मनुष्य अन्य मनुष्य को शुद्ध नहीं कर सकता।

❋

१३. जिन वस्तुओ की उत्पत्ति हुई है वे सभी अनित्य है, जो इस बात को प्रज्ञा की आखो से देखता है, वह सभी दु.खो से उदासीन हो जाता है। चित्त-शुद्धि का यही सच्चा मार्ग है।

१४. जितनी भी सस्कृत या उत्पन्न वस्तुएँ है वे सभी दु.ख-दायी ह। जो इस बात को जानता है और प्रज्ञा की आखो से देखता है, वह सभी दु:खो से विरत हो जाता है। चित्त-शुद्धि का यही सच्चा मार्ग है।

१५. जितने भी धर्म या पदार्थ है वे सभी अनित्य है। जो इस बात को जानता है और प्रज्ञा की आखो से देखता है, वह समस्त दु खो से विरत हो जाता है। चित्त-शुद्धि का यही सच्चा मार्ग है।

१-४. सु. च (अत्तदीपसुत्त) ५. ध प. (ब्राह्मण वग्गो) ६-८ म. नि. (वत्थ सुत्तन्त) ९. सु. च (जटिल सुत्त) ११. ध. प. (दण्ड वग्गो) १२. ध. प (अत्त वग्गो) १३-१५. ध. प. (मग्ग वग्गो)

चित्त

१. जिस समय मनुष्य का चित्त कामविकार से व्यग्र होता है और कामविकार के उपशमन का रास्ता उसे दिखाई नही देता, उस समय उस कामान्ध को यह नही सूझता, कि क्या तो स्वार्थ है और क्या परार्थ।

२. जिस समय उसका चित्त क्रोधाभिभूत अथवा आलस्य के कारण जड़वत्, भ्रांत अथवा सशयग्रस्त हो जाता है, उस समय वह यथार्थरीति से यह नही समझता कि अपना अथवा दूसरे का हित किसमें है ।

३. बर्तन के पानी में काला रंग डाल देने के बाद जैसे उसमें हमें अपना प्रतिविम्ब ठीकठीक नही दिखाई देता, उसी तरह जिसका चित्त कामविकार से व्यग्र हो जाता है, उसे अपने हित-अहित का ज्ञान नही रहता।

४. स्वच्छ पानी का बर्तन जब गरम हो जाता है, तब उस पानी से भाप निकलने लगती है और वह खौलने लगता है। उस समय मनुष्य उस खौलते हुए पानी में अपना प्रतिविम्ब नही देख सकता।

इसी तरह मनुष्य जब क्रोधाभिभूत होता है, तब उसकी समझ में यह नही आता कि उसका आत्महित किस में है।

५. उस बर्तन के पानी में अगर सिवार हो, तो मनुष्य उसमें अपना प्रतिविम्ब नही देख सकता।

इसी प्रकार जिसका चित्त आलस्य से पूर्ण होता है, वह अपना ही हित नही समझ सकता, दूसरो का हित कैसे समझ सकेगा ?

६. उस वर्तन का पानी अगर हवा से हिलने-डुलने लगे, तो उसमें मनुष्य अपना प्रतिविम्व कैसे देख सकता है ?

इसी प्रकार भ्रांतचित्त मनुष्य यह समझ ही नहीं सकता कि किसमें तो अपना हित है और किसमें पराया।

७. वह पानी अगर हाथ से हिला दिया गया हो, तो मनुष्य उसमें अपना प्रतिविम्व ठीकठीक नही देख सकता।

इसी तरह जिसका चित्र सशयग्रस्त होगया है, वह अपना और पराया हित-अहित समझ ही नही सकता।

८. वही पानी यदि निर्मल और शात हो तो मनुष्य उसमें अपना प्रतिविम्व स्पष्ट देख सकता है।

इसी प्रकार जिसका चित्त कामच्छद, व्यापाद (क्रोध), आलस्य, भ्रातता और सशयग्रस्तता इन पांच आवरणो से मुक्त होगया है, वही अपना और पराया हित यथार्थरीति से समझ सकता है।

*

९. जिस प्रकार पानी से निकलकर मछली थल मे आ पडने-पर तड़फड़ाती है, उसी तरह यह चित्त राग, द्वेप और मोह के फंदे से निकलने के लिए कापता है।

१०. कठिनाई से वश में आनेयोग्य, चचल और जहा-तहा दौडनेवाले चित्त का दमन करना अच्छा है। दमन किया हुआ चित्त ही शांति-दायक होता है।

११. कठिनाई से समझ में आनेयोग्य, अत्यंत चालाक और जहां-तहां दौड़नेवाले चित्त की बुद्धिमान् पुरुष को रक्षा करनी चाहिए; सुरक्षित चित्त से सदैव सुख मिलता है।

१२. दूर-दूरतक दौड़ लगानेवाले, एकाकी चलनेवाले शरीर-रहित और हृदय की गुफा मे छिपे हुए इस चित्त को जो संयम में रखता है वही प्रबल मार (विषयों) के बंधन से मुक्त हो सकता है।

१३. जिसका चित्त स्थिर नही, जो सच्चे धर्म को नही जानता और जिसके हृदय मे शाति नही, उसे पूर्ण ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है ?

१४. जिसका चित्त मल-रहित और अकम्प्य है, जो सदा ही पाप और पुण्य से विहीन है, उस सतत सजग रहनेवाले पुरुष के लिए कही भी भय नही।

१५. इस शरीर को घड़े के समान टूटजानेवाला समझकर इस चित्त को गढ़ के समान सुदृढ़ करके प्रज्ञा के अस्त्र से विषयो के साथ युद्ध करे; और जब विषयो को जीत ले तो उनके ऊपर कड़ी नजर रखे, असावधानी न करे।

१६. जितना हित माता-पिता या दूसरे भाई-बंधु कर सकते हैं, उससे कहीं अधिक हित मनुष्य का संयत चित्त करता है।

१७. अगर मकान का छप्पर खराब है, तो उसकी दीवारे वगैरा अरक्षित ही समझनी चाहिए, धीरे-धीरे वह मकान भूमिसात् ही होने को है।

इसी तरह जो अपने चित्त को नही सँभालता, उस मनुष्य के कर्म विकारग्रस्त हो जाते है, और इसका अत्यंत अनिष्ट परिणाम

होता है। अपने चित्त को यदि वह सँभाल लेता है तो उसके सारे कर्म सुरक्षित रहते हैं, और वह शाति से प्राण-त्याग करता है।

१८. जिस जमय चित्त में जड़ता आ गई हो, उस समय प्रश्रब्धि (शांति), समाधि और उपेक्षा इन तीन बोध्यगो की भावना करनी ठीक नही। किसी मनुष्य को आग सुलगानी हो, और वह चूल्हे में गीली लकडिया और गीला घासपात रखकर उसे फूकनें लगे तो क्या आग सुलग जायगी ?

इसी प्रकार जिसका चित्त जड़ हो गया है, वह यदि प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा इन तीन बोध्यगो की भावना करेगा, तो उसके चित्त को उत्तेजना मिलने की नही।

१९. उस समय तो धर्म-प्रविचय (धर्मान्वेपण), वीर्य (उद्योग या मनोवल) और प्रीति (हर्ष) इन तीन बोध्यगों की ही भावनाएँ अत्यंत उपयोगी हैं। सूखी लकडी और सूखा घास डालने से आग तुरंत सुलग जाती है।

इसी तरह चित्त की जाड्यावस्था में धर्मप्रविचय, वीर्य और प्रीति इन तीन सबोध्यगो की भावना करने से चित्त की जडता दूर हो जाती है और उसे अवश्य उत्तेजना मिलती है।

२०. पर, जिस समय चित्त भ्रात हो गया हो, उस समय धर्मप्रविचय, वीर्य और प्रीति इन तीन बोध्यगो की भावना करनी ठीक नही। इन बोध्यगो की भावना से चित्तभ्राति का उपशमन नही होता, वल्कि वह और भी अधिक भ्रात हो जाता है।

२१. उस समय तो प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा इन तीन बोध्यगों की भावना करनी चाहिए, क्योकि इन बोध्यगो से भडका

हुआ चित्त ठिकाने पर आ जाता है, इन्ही बोध्यंगों की भावना से भ्रातचित्त को शांति मिलती है ।

*

२२. केवल यह चित्त ही मरणशील मनुष्य का साथी है ।

*

२३. जिस प्रकार उस मकान मे वर्षा का पानी सहज ही पैठ जाता है, जो ठीक तरह से छाया हुआ नही होता, उसी प्रकार असयत (अभावित) चित्त में राग सहज ही प्रवेश कर जाता है ।

*

२४. जैसे अच्छी तरह छाये हुए मकान में वर्षा का पानी आसानी से नही पहुँच सकता, वैसे ही सुसंयत चित्त के अन्दर राग का प्रवेश नही हो सकता ।

' १. ८—बुद्धलीला-सार-संग्रह (भाग ३, पृष्ठ २७०) ९–१६. ध. प. (चित्तवग्गो) १७. अं. नि. (कूटसुत्त) १८–२१. बु. ली. सं. (पृष्ठ २७१) २२. अं. नि. (दसक निपात) २३–२४. ध. प. (यमक वग्गो)

अनित्यता

१. अरे ! यह तेरा गर्वीला रूप एक दिन जीर्ण-शीर्ण हो जायगा। यह क्षणभगुर शरीर रोगो का घर है। इस देह को सड़-सड़कर भग्न हो जाना है। आश्चर्य ही क्या—जीवन मरणान्त जो ठहरा।

२. इस जराजीर्ण शरीर के साथ कौन मूर्ख प्रीति जोडेगा ? इसकी हड्डियो को तो जरा देखो—शरदकाल की अपथ्य परित्यक्त लौकी की भाति, या कबूतरो की सी सफेद ये हड्डियां !

३. यह शरीर क्या है, हाडो का एक गढ है। यह गढ मास और रक्त से लिपा हुआ है। इस गढ के भीतर बुढ़ापा, मृत्यु, अभिमान और डाहने अड्डा बना रखा है।

४. इस चौथे पन में तू पीले पत्ते की तरह जीर्ण हो गया है। देख, ये यमदूत तेरे सामने खडे हैं। प्रयाण के लिए तो तू तैयार है, पर पाथेय (राह-खर्च) तेरे पास कुछ भी नही ! अत. अब भी तू अपने लिए रक्षा का स्थान बना, उद्योग कर, पडित बन, अपना यह मल धो डाल, दोषरहित हो जा। इस प्रकार तू आर्यो का दुर्लभ दिव्यपद प्राप्त कर लेगा।

५. आयु तेरी अब समाप्त हो चली है। तेरा कोई निवास-स्थान भी यहां नही, न पाथेय ही है। अतः तू अपने लिए रक्षा का स्थान बना, उद्योग कर, पडित बन, और अपना यह मल

पखारकर दोषरहित हो जा। इस तरह तू अब भी आर्यों का दुर्लभ दिव्यपद प्राप्त कर लेगा।

*

६. इस देह के भीतर कैसी-कैसी घिनौनी चीजें भरी हुई है—आंतें, यकृत्-पिंड, मूत्राशय, फेफडे, तिल्ली, लार, थूक, पसीना, चरबी, रक्त, पीव, पित्त, विष्ठा और मूत्र !

७. इस नौ दरवाजे की देह से कैसी-कैसी गंदी चीजें निकला करती है—आंख, कान, नाक, मुहँ ये सभी मलद्वार है। शरीर के एक-एक छेद से पसीना निकलता है।

८. जब इस देह में से प्राण निकल जाते है, तो यह फूल जाती है और नीली पड़ जाती है। मरघट में उसे फेंक देते है और तब सगे सम्बन्धी भी उस देह की उपेक्षा करते हैं।

९. कुत्ते, सियार, भेडिये और कीड़े वहां उस देह को खाते हैं और कौए और गीध भी महोत्सव मनाते है।

१०. ऐसी क्षणभंगुर और घृणित देह पर जो गर्व और दूसरो की अवहेलना करता है, उसका कारण सिवा उसकी मूढ़ता के और हो ही क्या सकता है ?

*

११. जागो ! बैठ जाओ ! दृढ़ निश्चय के साथ शांति का अभ्यास करो। तुम्हे गाफ़िल देखकर यह मृत्युराज मार कही अपने मोहपाश मे न फँसा ले !

१२. शल्य तुम्हारे शरीर में चुभा हुआ है, और तुम उससे पीड़ित हो रहे हो। आश्चर्य है कि इस दु:ख-पीड़ा में भी तुम्हें नीद आरही है !

१३. अप्रमाद और प्रज्ञा के जरिये अपने शरीर में चुभा हुआ यह तीक्ष्ण शल्य निकाल लो ना ?

*

१४. अरे, यह जीवन कितना अल्प है ! सौ वर्ष पूरे होने के पहले ही यह समाप्त हो जाता है। और जो इससे अधिक जीता है वह भी एकदिन जराजीर्ण होकर मर जाता है।

१५. मनुष्य जिसे मानता है कि यह मेरा है उसे भी एक दिन मृत्यु-द्वारा नष्ट होना ही है, यह समझकर बुद्धिमान् धर्मोपासक 'ममत्व' के ऊपर निर्भर न करे।

१६. सपने मे देखी हुई वस्तु को जागने के बाद जैसे मनुष्य देख नही सकता, वैसे ही वह अपने परलोकवासी प्रियजनो को नही देख सकता।

१७. जो प्राणी परलोकवासी हो जाता है उसका यहा केवल नाम ही शेष रह जाता है।

१८. ममत्व में लुब्ध मनुष्य न तो शोक का त्याग कर सकते हैं, न दु ख और डाह का ही।

*

१९. ओह ! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतनाशून्य हो सूखे ठूठ की तरह पृथिवी पर गिर रहेगा।

*

२०. राग आदि के पुष्पो को चुननेंवाले आसक्तियुक्त मनुष्य को मृत्यु उसी तरह पकड ले जाती है, जिस तरह कि सोये हुए गांव को बाढ़ वहा ले जाती है।

*

२१. सोये हुए गांव को जैसे भारी बाढ़ वहा ले जाती है, वैसे ही पुत्र कलत्रादि में आसक्त पुरुष को धोखे-ही-धोखे मे मौत उठा ले जाती है।

२२. न पुत्र रक्षा कर सकता है, न पिता और न बधु-बांधव ही। जब मौत आकर घर दबाती है, तब न जातिवाले रक्षक हो सकते है, न परिवारवाले।

*

२३. अनित्यता न तो नगर-धर्म है, न ग्राम-धर्म, और न वह कुलधर्म ही है। समस्त मनुष्यों और देवताओ का यही स्वभाव है कि एक-न-एक दिन उन्हे मरना ही होगा।

*

२४. मूर्ख सोचता है कि 'यह पुत्र मेरा है', 'यह धन मेरा है!' अरे, जब यह शरीर ही अपना नही है, तब किसका तो पुत्र और किसका धन?

*

२५. जरा देखो तो इस विचित्र शरीर को। तमाम व्रण ही व्रण है। पीडित है, तो भी अनेक सकल्पो से युक्त है! अरे, इसकी स्थिति ही अनियत है। क्या ठिकाना, कब छूट जाय।

*

१—५. ध. प. (जरा वग्गो). ६—१०. सु. नि. (विजयसुत्त) ११—१३. सु. नि. (उट्ठान सुत्त) १४—१८. सु. नि. (जरासुत्त) १९. ध. प. (चित्त वग्गो) २०. ध. प. (पुप्फ वग्गो) २१—२२. ध. प. (मग्ग वग्गो) २३. थेरी अपदान (तृतीय भाणवार) २४. ध. प. (बाल वग्गो) २५. ध. प. (जरा वग्गो)

शोक किसके लिए ?

१. ऐसा कोई उपाय नही कि जिससे मृत्यु न हो। जिसने जन्म लिया है वह मरेगा अवश्य। प्राणियो का स्वभाव ही मृत्यु है।

२. पके हुए फलो को जिस तरह डाल से नीचे गिर पडने का भय है, उसी तरह जन्मे हुए प्राणियो को मृत्यु का हमेशा ही भय लगा रहता है।

३. कुम्हार के गढे हुए मिट्टी के बर्तन का जिस प्रकार फूटने पर पर्यवसान हो जाता है, उसी प्रकार प्राणियो के जीवन का मृत्यु मे पर्यवसान होता है।

४. छोटा हो या बड़ा, मूर्ख हो या पडित, सभी मृत्यु के अधीन हैं। ये सभी प्राणी मृत्युपरायण हैं।

५. मृत्यु और जरा से यह सारा संसार ग्रसित हो रहा है। यह तो लोक का स्वभाव ही है, ऐसा समझकर आत्मज्ञ पडित शोक नही करते।

६. जिसके आने और जानें का मार्ग तुझे मालूम नही, और जिसके दोनो ही अंत तेरे देखने में नही आते, उसके लिए तू अकारथ ही शोक करता है।

७. कितना ही रोओ, कितना ही शोक करो, इससे चित्त को शाति तो मिलने की नही। उलटा दु ख ही बढेगा, और शरीर पर भी शोक का बुरा प्रभाव पड़ेगा।

८. आप ही अपने को कष्ट देनेवाला मनुष्य क्षीणकाय और निस्तेज हो जाता है। शोक से उन मृत प्राणियों को कोई लाभ तो पहुंचता नही। अतएव यह शोक व्यर्थ ही है।

९. कोई सौ वर्ष या इससे भी अधिक जीवित रहे, तो क्या—एक-न-एक दिन तो उसे प्रियजनो के बीच से अलग होना ही है।

१०. अतः जो अपने को सुखी रखना चाहता है, उसे अपने अतःकरण से इस शोकरूपी शल्य को खीचकर फेक देना चाहिए।

*

११. यह चीज मेरी है या दूसरो की, ऐसा जिसे नहीं लगता और जिसे ममत्व की वेदना नही होती, वह कभी यह कहकर शोक नही किया करता कि मेरी वह चीज नष्ट हो गई है।

*

१२. प्रिय वस्तु से ही शोक उत्पन्न होता है, और प्रिय से ही भय। प्रिय वस्तुओं के बधन से जो मुक्त है, उसे शोक नही; फिर भय कहां से हो ?

१३. प्रेम (मोहासक्ति) से ही शोक उत्पन्न होता है, और प्रेम से ही भय; प्रेम से जो मुक्त हो गया है उसे शोक कैसा—और फिर भय कहां से होगा ?

१४. इसी प्रकार राग, काम और तृष्णा से शोक तथा भय उत्पन्न होता है। राग, काम और तृष्णा से जो विमुक्त है, उसका शोक से क्या संबंध—और फिर उसे भय कहां से होगा ?

*

१५. मनुष्य तो है ही क्या, ब्रह्मा के भी वश की यह बात नही कि जो जराधर्मी है उसे जरा (बूढापा) न सताये, जो मर्त्य

है उसकी मृत्यु न हो, जो क्षयवान् है उसका क्षय न हो और जो नाशवान् है उसका नाश न हो ।

१६. किसी प्रियजन की मृत्यु हो जाने के प्रसंगपर मूढ लोग यह विचार नही करते कि 'यह वात तो है नही कि मेरे ही प्रिय-जन को वुढापा, व्याधि और मृत्यु का शिकार होना पड़ा है, यह तो सारे ससार का धर्म है, प्राणिमात्र जरा और मृत्यु के पाश में वँधे हुए है !'

१७. मूढ लोग विवेकान्ध होकर शोक-समुद्र में डूव जाते है, और किकर्तव्यविमूढ हो जाते है। न उन्हे अन्न रुचता है, न जल। उनके शरीर की काति क्षीण पड जाती है। काम-काज सव वद हो जाता है। उनकी यह दशा देखकर उनके शत्रु आनद मनाते है, कि चलो अच्छा हुआ, इनका प्रियजन तो मरा ही, यह भी उसके वियोग में मरनेवाले है ।

१८. पर वुद्धिमान् और विवेकी मनुष्य की वात इससे जुदी है। वह जरा, व्याधि, मरण, क्षय और नाश का शिकार होने पर यथार्थरीति से विचार करता है। यह देखकर कि इस विकार से तो जगत् में कोई भी अछूता नही वचा, वह शोक नही करता। वह अपने अत करण से शोक के उस विपाक्त वाण को खीच-कर फेंक देता है, जिस वाण से विद्ध मूर्ख मनुष्य अपनी ही हानि करते है ।

१–१०. सु नि (सल्ल सुत्त) ११ सु नि (अत्तदंड सुत्त) १२-१४ ध प (पिय वग्गो) १५–१८ अ नि. (कोसल सुत्त)

विषयों का मीठा विष

१. नेत्र, कान, नासिका, जिह्वा और त्वचा इन पाच इन्द्रियों के रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श से मनुष्य को जो सुख प्राप्त होता है, उसी को मैं विषयों की जहरीली मिठाई कहता हूं।

२. एक नौजवान आदमी व्यापार, खेती-पाती या नौकरी करके अपना निर्वाह करता है। अपने रोजगार-धन्धे में उसे भारी-से-भारी कष्ट झेलना पड़ता है, तो भी विषय-भोग की वस्तु प्राप्त करने के लिए वह दिन-रात प्रयत्न किया करता है। इतना परिश्रम करने पर भी, यदि उसकी मनचाही चीज उसे नही मिलती तो वह शोकाकुल होकर विचार-विमूढ बन जाता है।

३. यदि उसे अपने उद्योग मे यश मिल गया और अपनी वाछित वस्तु प्राप्त हो गई, तो वह दिन-रात इसी चिन्ता मे पड़ा रहता है, कि कोई दुष्ट राजा या चोर उसे लूट न ले जायँ, आग या बाढ़ से वह नष्ट न हो जाय और उससे दुश्मनी माननेवाले बन्धु-बान्धव कही उसे नुकसान न पहुँचा बैठे।

इन विचारो से उसका मन सदा ही शंकित और त्रस्त रहता है। और अगर उसकी आशंका सत्य निकली, तो उस मनुष्य के दु.ख का पार नही रहता।

४. इन विषयो के लिए ही एक राजा दूसरे राजा के साथ, क्षत्रिय क्षत्रिय के साथ, ब्राह्मण ब्राह्मण के साथ, वैश्य वैश्य के साथ,

माता पुत्र के साथ, पुत्र माता के साथ, बाप लड़के के साथ, बहिन भाई के साथ, भाई बहिन के साथ और मित्र मित्र के साथ लड़ता है। इन विषयों के पीछे क्या-क्या काण्ड नही होते—गाली-गलौज होता है, हाथापाई होती है, हथयार चल जाते है और लोग मारे भी जाते है, और नही तो मरणातक दु.ख तो भोगना ही पडता है।

५. इन विषयो की प्राप्ति के लिए ही लोग लडने पर आमादा हो जाते है, और भीषण युद्धक्षेत्र में उतर पड़ते है। खूब घमासान युद्ध होता है, और रणक्षेत्र में कितने ही मनुष्य अस्त्र-शस्त्रो से मारे जाते है, कितने ही आहत होते है। विषयो की इस जहरीली मिठाई के पीछे उन्हे मरणान्तक दु ख भोगना पड़ता है।

६. इस विषय-भोग के लिए कितने ही मनुष्य चोरी करते है, डाका डालते है, राहगीरो पर टूट पडते है या दूसरो की स्त्रियो के साथ व्यभिचार करते है। विषय-भोग के शिकार उन चोरों, डाकुओ और व्यभिचारियो को पकडकर राजा अनेक प्रकार का दण्ड देता है। उनके हाथ-पैर तोड़ डालते है, उनके नाक-कान काट लेते है या उनका सिर ही उड़ा देते है।

७. इस विषाक्त विषय-भोग के लिए ही मनुष्य मन, वचन और काया से इस लोक में घोर-से-घोर दुराचरण करता है, और मृत्यु के बाद दुर्गति को प्राप्त होता है।

८. विषयो की आसक्ति छोड़ देने से ही मनुष्य विषय-विमुक्त हो सकता है।

९. जो ज्ञानवान् मनुष्य विषय-माधुर्य, विषय-दोष और विषय-मुक्ति को यथार्थरीति से जानता है, वह स्वयं विषयों का

त्याग कर देता है, और दूसरो को भी विषयों के त्याग का उपदेश करता है ।

१०. सौन्दर्य की मिठाई क्या है ? किसी अत्यन्त सुरूपवती तरुणी को देखकर मन में जो मादक सुख उत्पन्न होता है, वही सौन्दर्य की मिठाई है ।

११. पर इस सौन्दर्य की मिठाई में तो विकार है । वही सुन्दरी तरुणी जब वृद्धा हो जाती है, जब उसकी कमर झुक जाती है, बिना हाथ में लकड़ी लिये जब वह चल नही सकती, उसके सब अंग शिथिल पड़ जाते है, दात गिर जाते है, बाल सन-से सफेद हो जाते है, गर्दन हिलने लगती है, चेहरे पर झुर्रियां पड़ जाती है, तब उसका वह पहले का सरस सौन्दर्य और ललित लावण्य विनष्ट हो जाता है । यह है सौन्दर्य का दोष ।

१२. उस सुन्दरी तरुणी के शव को तुम श्मशान में पड़ा हुआ देखो, तो क्या तब भी तुम उस सौन्दर्य को विकारमुक्त मानोगे ? कौओ और कुत्तो का खाया हुआ वह शव ! कहा गया वह सरस सौन्दर्य, कहां गया वह ललित लावण्य, और कहां गया वह तरल तारुण्य ?

१३. सौन्दर्य के विषय मे आसक्ति न रखना ही सौन्दर्य-जन्य भय से मुक्त होने का सच्चा मार्ग है । सौन्दर्य की मिठास क्या है, उसमें दोष क्या है, और उस दोष से हम किम प्रकार मुक्त हो सकते है, इस सब को जो बुद्धिमान् पुरुष यथार्थरीति से समझता है, वह स्वयं तो रूपरस के विषय से मुक्त हो ही जायगा, दूसरों को भी सौन्दर्य-मुक्ति के मार्ग पर चलने की शिक्षा देगा ।

१—१३ म. नि. (महादुक्खक्खन्ध सुत्तंत)

वैराग्य

१. जैसे थोड़े पानी मे मछलिया तडपड़ाया करती है, वैसे ही एक दूसरे के साथ अंदर-ही-अंदर विरोध करके दौड़धूप करते हुए लोगो को देखकर मेरे अतःकरण में भय का प्रवेश हुआ।

२. मुझे कुछ ऐसा लगने लगा कि यह जगत् असार है और समस्त दिशाएँ मानो काप रही है। इस जगत् मे मैंने अपने लिए आश्रय-स्थान खोजा, पर वह कही भी न मिला!

३. अरे, अंततक ये लोग लडते ही रहेगे—यह देखकर मुझे दुनिया से अत्यत अरुचि होगई। तव अपने ही हृदय में चुभा हुआ दुर्दर्श शल्य मुझे दिखाई दिया।

४. यदि शल्य से मनुष्य विघा हुआ है तो वह भागदौड मचायगा ही; पर यदि वह अतर में विघा हुआ वाण खीचकर निकाल लिया जाय, तो अपनी सारी दौड़धूप वद करके वह एक जगह स्थिर हो जायगा।

*

५. ओह! कसी भयकर आग लगी है! सव जल रहे हैं। नेत्रेन्द्रिय जल रही है। रूप जल रहा है। नेत्रेन्द्रिय से उत्पन्न विज्ञान भी जल रहा है। नेत्र का विपय जल रहा है।

६. ये सव किस आग से जल रहे है? राग की आग से, द्वेष की आग से और मोह की आग से ये सव जल रहे हैं। जन्म,

जरा, मृत्यु, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य आदि परिणामों से ये सब जल रहे हैं।

७. इसी प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय और उसका विषय शब्द, घ्राणेन्द्रिय और उसका विषय गंध, जिव्हा और उसका विषय रस, त्वचा और उसका विषय स्पर्श, मन और उसका विषय धर्म—ये सभी जल रहे हैं। रागाग्नि, द्वेषाग्नि और मोहाग्नि इन्हे जला रही हैं।

८. जन्म, जरा, मृत्यु, शोक, और दुःख को जानकर श्रुतवान् आर्यश्रावक (गृहस्थ) को चाहिए कि वह चक्षु और रूप, श्रोत और शब्द, घ्राण और गंध, जिव्हा और रस, त्वचा और स्पर्श तथा मन और धर्म में आसक्त न हो, निर्वेद के द्वारा विराग-निधि प्राप्त करले।

९. विराग होने पर ही मनुष्य को ज्ञान उत्पन्न होता है, और तभी उसका जन्मक्षय होता है। ब्रह्मचर्यव्रत भी तभी समाप्त होता है। मनुष्य फिर यहां आकर जन्म नही लेता।

*

१०. मैं जराधर्मी हूँ, व्याधिधर्मी हूँ, मरणधर्मी हूँ, इन तमाम प्रिय वस्तुओं और प्रियजनों से निश्चय ही एक दिन वियोग होगा। मैं जो बुरा या अच्छा कर्म करूँगा, उसका मुझे ही भागीदार होना पड़ेगा। अतः कर्म ही मेरा धन है, और कर्म ही मेरा मित्र।

११. 'मैं जराधर्मी हूँ' ऐसा विचार करने से मनुष्य का यौवन-मद नष्ट होजाता है। इस तारुण्यमद के कारण मनुष्य काया, वचन और मन से पाप करता है; पर जो यह स्मरण रखता है कि मैं खुद जराधर्मी हूँ, उसका यह मद नष्ट होजाता है—नष्ट नही, तो कुछ कम तो हो ही जाता है।

१२. 'मैं व्याधिधर्मी हूँ' इस बात का चिंतन करने से यह लाभ होता है कि जिस आरोग्यमद के कारण मनुष्य त्रिविध पापो का आचरण करता है वह नष्ट होजाता है—नष्ट नही, तो कुछ कम तो हो ही जाता है ।

१३. 'मै मरणधर्मी हूँ' इस बात का चिंतन करते रहने से मनुष्य का जीवितमद नष्ट होजाता है है । यही इस चिंतन का लाभ है ।

१४. 'तमाम प्रिय वस्तुओ और प्रियजनो से एकदिन वियोग होने को हैं' इस बात का स्मरण रखने से मनुष्य प्रिय वस्तु अथवा प्रियजन के अर्थ पापाचरण करने में प्रवृत्त नही होता, और न उसे वियोग-दु.ख का ही भाजन बनना पडता है ।

१५. जिस वस्तु का जन्म हुआ है उसका नाश न हो, क्या यह शक्य है ?

१–४ सु नि (अत्तदड सुत्त) ५–९ बुद्धदेव (जगन्मोहन वर्मा) १०–१४. बु. ली. सं. (पृष्ठ २६२) १५. दी. नि. (महापरिनिब्बाण सुत्त)

वाद-विवाद

१. निंदा और स्तुति दोनो ही विवाद के विषफल है। ये क्षुद्र वस्तुएँ चित्त के उपशमन की कारणभूत नही बनती। अत. विवाद कल्याणप्रद नही है, ऐसा जाननेवाला कभी विवाद मे नही पड़ता।

२. ये जो भिन्न-भिन्न मत-मतांतर है, उन सबको विद्वान् लोग स्वीकार नही करते। दृष्ट और श्रुत के विषय में जिसे राग उत्पन्न नही होता ऐसा निश्चल व्यक्ति विवाद मे पडकर क्यों चचल होने लगा ?

३. जिसे कुछ लोग परम धर्म मानते हैं उसे ही कुछ लोग हीन धर्म मानते है। ये सभी जब अपने को कुशल समझते है, तो फिर उनमे कौन वाद सच्चा है ?

४. वे कहते हैं कि हमारा ही धर्म परिपूर्ण है, और दूसरो का धर्म हीन है। इस प्रकार लडाई-झगड़ा खडा करके वे वाद-विवाद करते है, और कहते हैं कि हमारी ही दृष्टि सच्ची है !

५. मनुष्य यदि दूसरो की की हुई निंदा से ही हीन ठहरने लगे, तो फिर किसी भी पथ का मनुष्य श्रेष्ठ नही ठहर सकता; क्योकि अपने-अपने पथ को दृढ़ (नित्य) समझनेवाले लोग दूसरो के पंथ को हीन ही कहते हैं ।

६. और जिस तरह वे अपने-अपने पंथ की स्तुति करते है उसे देखते हुए तो यही निश्चय होता है कि वे सभी सद्धर्म की

पूजा करते है, और सभी पथ सच्चे ठहरते है, क्योकि उस प्रत्येक पथ मे शुद्धि का निर्देश तो है ही ।

७. पर ब्राह्मण को दूसरो से कुछ सीखना नही है, और उस का यह आग्रह भी नही कि सब पथो मे यही पथ श्रेष्ठ है। वह तो वाद-विवाद से परे चला जाता है, क्योकि वह यह नही मानता कि कोई भी धर्मपथ सर्वश्रेष्ठ है।

८ कुछ लोग यह समझते है कि जो हम जानते है, जो हम देखते है, केवल वही ठीक है और शुद्धि इसी दृष्टि से होगी। वे कहते है कि दूसरो के मार्ग से शुद्धि का मार्ग जुदा ही है। पर ऐसा कहने मे उन्हे क्या मिलता है ?

९. देखनेवाला केवल नामरूप ही देखेगा, और उसे देखकर उतना ही उसे ज्ञान होगा। वह न्यून अथवा अधिक भले ही देखे, पर विज्ञ जन यह नही कहते कि शुद्धि इतने मे ही होती है।

१०. अपने कल्पित किये हुए मत को महत्व देनेवाले और हठपूर्वक वाद-विवाद करनेवाले मनुष्य को उपदेश से समझाना या शांत करना कठिन है। जिस मत का वह आश्रय लेता है उसीमें कल्याण है और उसीमे शुद्धि है ऐसा वह कहता है और ऐसा ही मानता है ।

११. किंतु ब्राह्मण की बात तो निराली ही है। वह कभी विकल्प मे नही पडता। वह दृष्टि का आग्रह नही रखता। ज्ञान को भी वह महत्व नही देता। वह भिन्न-भिन्न मतो को जानता है, और उनके अनुयायी लोगो की उपेक्षा करता है।

१२. इस जगत् में ग्रन्थि का त्याग करके विवादापन्न लोगो के बीच मुनि स्वय पक्षपाती नही होता। वह इस अशान्त लोक

में शांत और उपेक्षक बना रहता है। और जब दूसरे लोग अपने-अपने मत का आग्रह करते है, तब वह अनाग्रही रहता है।

१३. तृष्णा, काम, भव, दृष्टि और अविद्या इन पूर्व के आस्रवो (प्रवाहो) को तोड़कर वह नये आस्रवों का संचय नही करता। सांप्रदायिक मत-मतातरों से वह मुक्त हो जाता है, और इस जगत्-पाश में वद्ध नही होता।

*

१४. जो सम, अधिक या न्यून समझता है, वही विवाद करता है। तीनो भेदो में जो अचल है, उसकी दृष्टि में सम क्या, अधिक क्या और न्यून क्या? जिसमें सम-विषम नही है, वह विवाद करे तो क्या और किसके साथ?

*

१५. सभी लोग इस बात का प्रतिपादन करते है, कि पथ तो हमारा ही शुद्ध है, दूसरो के पंथों में शुद्धि कहां? जिस पंथ का हमने आश्रय लिया है, उसी पंथ में श्रेय है ऐसा कहनेवाले अपने को भिन्न-भिन्न पंथो में वाध लेते है।

१६. वे लोग वाद-विवाद करने के इरादे से सभा में जाकर एक दूसरे को मूर्ख ठहराते है। अपने को शास्त्रार्थ मे कुशल समझनेवाले ये लोग वाहवाही लूटने की इच्छा से ही वाद-विवाद करते है।

१७. सभा मे जव वे शास्त्रार्थ करते है, तब प्रशंसा लूटने की इच्छा से दूसरो पर वाणी का प्रहार करने लगते है। यदि वाद में वे हार जाते है तो मारे शर्म के मुहँ छिपा लेते है, और जब उनकी निंदा होती है तो क्रोध में आकर दूसरों के दोष ढूढ़ने लगते हैं!

कर बैठता है या खुद अपने को ही चोट पहुँचाता है। विवाद में यह विष देखकर उससे निवृत्त हो जाना ही अच्छा है; कारण कि उसमें सिवा एक प्रशंसा के और कोई भी लाभ नही।

१९. सभा मे कभी-कभी दूसरो के वाद को भंग करके वे प्रशंसा प्राप्त करते है, और इससे उन्हे खूब हर्ष होता है। विजय के गर्व में आसमान की तरफ सिर उठाकर चलते है! सभा में विजय क्या होती है, मानो उनका जीवन कृतकृत्य हो जाता है!

२०. पर उनका यह विजय-गर्व ही अत में उनके अध.पात का कारण होता है। अत बुद्धिमान् मनुष्य को वाद-विवाद में पडना ही नही चाहिए। वाद-विवाद से कुछ अंत शुद्धि तो होती नही; तब फिर अहंकार वढाने से लाभ ?

२१. वाद-विवाद के युद्ध में प्रवृत्त करनेवाला मेरा अहंकार पहले ही नष्ट हो चुका है। अब विवाद करूँ तो कैसे ?

२२. जिन्होंने प्रतिपक्ष-बुद्धि को नष्ट कर दिया है, और जो अपने पंथ की खातिर दूसरे पंथो के साथ विरोधभाव नही रखते, और जिन्हे यह प्रतीत नही होता कि हमारा ही पंथ सर्वश्रेष्ठ है, उनके पास जाकर, अरे वादी, तुझे क्या मिलने का है ?

*

२३. ये मनुष्य तो अपने-अपने मत से चिपटकर और दूसरों के साथ वाद-विवाद करके अपनें को कुशल कहलाना चाहते है! कहते क्या है कि जिन्हे हमारे मत का ज्ञान है वेही धर्म के ज्ञाता है, और जो हमारे इस मत को बुरा बतलाते है, वे कभी मुक्त होने के नही!

२४. इस प्रकार झगड़ा-टटा खड़ा करके ये लोग वाद-विवाद करते है, और दूसरों को बेवकूफ बनाते है। ये सब अपने को ही कुशल कहनेवाले हैं। इनके मत से फिर कौन-सा वाद सच्चा कहा जाय ?

२५. दूसरो के धर्म को न जाननेवाला मनुष्य यदि मूर्ख, पशु और हीनबुद्धि ठहराया जाय, तो फिर इन सांप्रदायिक मतों से चिपटे रहनेवाले सभी मूर्ख और सभी हीनबुद्धि ठहरेगे !

२६. ये जो एक दूसरे को मूर्ख कहते है यह ठीक नही। क्योकि ये अपने-अपने मत को ही सत्य मानते है, और दूसरो को मूर्ख ठहराते है।

२७. कुछ लोग जिसे युक्तियुक्त सत्य मानते है, उसे ही दूसरे तुच्छ और असत्य बताते है, और इस तरह व्यर्थ का टंटा खड़ा करके वाद-विवाद करते है। ये सब एक ही सत्य का प्रतिपादन क्यों नही करते ?

२८. हमारे ही मत में अत्यंत सार है, इस प्रकार के विचार को आश्रय देकर ये वाद-विवादी लोग अपने को कृतकृत्य मान रहे है ! अहकार में मत्त हो ये पूर्ण अभिमानी बन बैठे है। अपने मान से ही अपने को अभिषिक्त कर रहे है। यह सब सांप्रदायिकता को कलेजे से लगाने का परिणाम नही तो क्या है ?

२९. 'शुद्धि तो इसी पथ में है,' ऐसा वे प्रतिपादन करते है, और कहते हैं कि दूसरे पंथो में शुद्धि नही। इस प्रकार अपने ही पथ को दृढ़ बतलानेवाले ये संप्रदायपंथी भिन्न-भिन्न पंथो में निविष्ट हो रहे है !

३०. जो मनुष्य मेरे पंथ से भिन्न मत का प्रतिपादन करते है, वे शुद्धि के विरुद्ध जा रहे है और वे मुक्त नही हो सकते !

यही कारण है कि ये लोग अपने-अपने सम्प्रदाय के लोभ-पाश म बंधे हुए हैं।

३१. जिस मनुष्यने तमाम रूढ़ मतों को छोड दिया है, वह फिर किसी के साथ वाद-विवाद नही करता ।

*

३२. अस्थिर मनुष्य ही वाद-विवाद मे पड़ता है। निश्चल मनुष्य को क्या पडा है कि वह किसी के साथ वाद-विवाद करे? जिसमे न आत्मवुद्धि है न अनात्मवुद्धि, उसके पास साप्रदायिकता का काम ही क्या ? उसने तो अपनी सारी साप्रदायिकता धोडाली है। फिर वह क्यो और किसके साथ वाद-विवाद करे?

१—१३. सु नि (महावियूह सुत्त) १४ बु च (मागदिय सुत्तत) १५—२२. अट्ठक वग्ग (पसूर सुत्त) २३—३१. सु नि. (चूल वियूह सुत्त) ३२. सु. नि. (दुट्ठक सुत्त)

गृहस्थ के कर्त्तव्य

१. जिस आर्यश्रावक (गृहस्थ) को छै दिशाओ की पूजा करनी हो, वह चार कर्मक्लेशो से मुक्त हो जाए। जिन चार कारणों के वश होकर मूढ़ मनुष्य पापकर्म करने मे प्रवृत्त होता है, उनमे से उसे किसी भी कारण के वश नही होना चाहिए। और सपत्ति-नाश के उसे छहो दरवाजे बद कर देने चाहिए।

२. छै दिशाओं से यहा क्या तात्पर्य है ? माता-पिता को पूर्व दिशा, गुरु को दक्षिण दिशा, पत्नी को पश्चिम दिशा, बंधु-बाधव को उत्तर दिशा, दास और मजदूर को नीचे की दिशा तथा साधु-संत को ऊपर की दिशा समझना चाहिए।

३. चार कर्म-क्लेश क्या है ? हिंसा, चोरी, व्यभिचार और असत्यभाषण ये चार कर्म-क्लेश है। गृहस्थ को इनसे हमेशा दूर रहना चाहिए।

४. किन चार कारणों के वश होकर मूढ़ जन पापकर्म करते है ? स्वेच्छाचार, द्वेष, भय और मोह के कारण अज्ञ जन पाप करते है। आर्यश्रावक को इनमे से किसी भी कारण के वश होकर पापकर्म में प्रवृत्त नही होना चाहिए।

५. संपत्ति-नाश के छै दरवाजे कौन-से है ? मद्यपान, रात मे आवारागर्दी, नाच-तमाशे का व्यसन, जुआ, दुष्ट मनुष्यों की सगति और आलस्य।

६. मद्यपान के व्यसन से संपत्ति का नाश होता है, इसमें तो सदेह ही नही। फिर मद्यपान से कलह बढ़ता है, और वह रोगों का घर तो है ही। इससे अपकीर्ति भी पैदा होती है। यह व्यसन लज्जा को नष्ट और बुद्धि को क्षीण कर देता है। मद्यपान के ये छै दुष्परिणाम है।

७. जिसे रात मे इधर-उधर घूमने-फिरने का चसका लग जाता है, उसका शरीर स्वय अरक्षित रहता है। उसकी स्त्री और बाल-बच्चे भी सुरक्षित नही रह सकते। वह अपनी संपत्ति नही सँभाल सकता। उसे हमेशा यह डर लगा रहता है कि कही कोई मुझे पहचान न ले। उसे झूठ बोलने की आदत पड जाती है। और वह अनेक कष्टो में फँस जाता है।

८. नाच-तमाशे देखनें में भी कई दोष है। नाच-तमाशा देखने-वाला हमेशा इसी परेशानी मे पडा रहता है कि आज कहां नाच है, कहा तमाशा है, कहा गाना-बजाना है। अपने काम-धधे का उसे स्मरणतक नही रहता।

९. जुआरी आदमी जुए में अगर जीत गया, तो दूसरे जुआरी उससे ईर्ष्या करने लगते है; और अगर हार गया तो उसे भारी दु ख होता है। और उसके धन का नाश तो होता ही है। उसके मित्र और उसके सगे सबधी भी उसकी बात पर विश्वास नही करते। उनकी ओर से उसे बारबार अपमान सहन करना पड़ता है। उसके साथ कोई नया रिश्ता नही जोडना चाहता, क्योकि लोगों को यह लगता है कि यह जुआरी आदमी अपने कुटुब का पालन-पोषण करने में असमर्थ है।

१०. अव दुष्टों की सगति का दुष्परिणाम सुनो। धूर्त, दारू-खोर, लुच्चे, चोर आदि सभी तरह के नीच मनुष्यों का साथ होने से दिन-प्रतिदिन उसकी स्थिति गिरती ही जाती है, और अन्त में वह हीन-से-हीन दशा को पहुँच जाता है।

११. आलस्य के भी फल महान् भयंकर हैं। एक दिन आलसी आदमी इस कारण काम नही करता कि आज बड़ी कड़ाके की सरदी पड़ रही है; और दूसरे दिन बेहद गरमी के कारण वह काम से जी चुराता है। किसी दिन कहता है कि अब तो शाम होगई है, कौन काम करने जाय, और किसी दिन यह कहता है कि अभी तो वहुत सवेरा है, काम का वक्त अभी कहा हुआ? इस तरह आज का काम कल के ऊपर छोड़कर वह कोई नई सपत्ति तो उपार्जन कर नही सकता, और अपने पूर्वजों का पूर्वार्जित धन नष्ट करता जाता है।

१२. उपर्युक्त चारो कर्मक्लेशो, चारो पाप-कारणो और छओं विपत्ति-द्वारो का त्याग करने के बाद गृहस्थ को छै दिशाओ की पूजा आरभ करनी चाहिए। उपर्युक्त प्रत्येक दिशा के पाच-पांच अग हैं।

१३. माता-पितारूपी पूर्व दिशा की पूजा के ये पाच अग हैं:—

(१) उनका काम करना;

(२) उनका भरण-पोषण करना;

(३) कुल मे चले आये हुए सत्कर्मों को जारी रखना;

(४) माता-पिता की संपत्ति का भागीदार बनना;

(५) दिवगत माता-पिता के नामपर दान-धर्म करना।

यदि इन पाच अंगो से माता-पिता की पूजा की जाय, तो वे अपने पुत्र पर पांच प्रकार का अनुग्रह करते हैं.—

(१) पाप से उसका निवारण करते हैं;

(२) कल्याणकारक मार्ग पर उसे लेजाते हैं;

(३) उसे कला-कौशल सिखाते हैं;

(४) योग्य स्त्री के साथ उसका विवाह कर देते हैं,

(५) उपयुक्त समय आनेपर अपनी संपत्ति उसे सौप देते हैं,

१४. गुरुरूपी दक्षिण दिशा की पूजा के ये पाच अग हैं —

(१) गुरु को देखते ही खडा होजाना,

(२) गुरु बीमार पड़े तो उनकी सेवा करना;

(३) गुरु जो सिखावें उसे श्रद्धापूर्वक समझ लेना;

(४) गुरु का कोई काम हो तो कर देना;

(५) वह जो विद्या दें उसे उत्तम रीति से ग्रहण करना।

शिष्य यदि इन पाच अगो से गुरु की पूजा करता है, तो गुरु उसपर पांच प्रकार का अनुग्रह करता है.—

(१) सदाचार की शिक्षा देता है;

(२) उत्तम रीति से विद्या पढाता है;

(३) जितनी भी विद्याए उसे आती है, उन सब का ज्ञान शिष्य को करा देता है;

(४) अपने सबधियो और मित्रो मे उसके गुणो का बखान करता है;

(५) जब कही बाहर जाता है, तब ऐसी व्यवस्था कर देता है कि जिससे शिष्य को खाने-पीने की कोई अडचन न पडे।

१५. पत्नी-रूपी पश्चिम दिशा की पूजा के ये पांच अग है.—

(१) उसे मान देना;

(२) उसका अपमान न होने देना;

(३) एक पत्नीव्रत का आचरण करना;

(४) घर का कारबार उसे सौंपना;

(५) उसे वस्त्र और आभूषणों की कमी न पड़ने देना।

पति यदि इन पांच अगो से पत्नी की पूजा करता है तो वह अपने पति पर पाच प्रकार का अनुग्रह करती है:—

(१) घर मे सुदर व्यवस्था रखती है;

(२) नौकर-चाकरों को प्रेम के साथ रखती है;

(३) पतिव्रता रहती है;

(४) पति उसे जो संपत्ति देता है उसकी रक्षा करती है, उसे उड़ाती नही;

(५) घर के सब काम-काजो में सदा तत्पर रहती है।

१६. बधु-बांधवरूपी उत्तर दिशा की पूजा के ये पांच अग है.—

(१) जो वस्तु देनेयोग्य हो वह उन्हे देना;

(२) उनसे मधुर वचन बोलना;

(३) उनके उपयोगी बनना;

(४) उनके साथ निष्कपट व्यवहार रखना;

(५) समान भाव से बर्ताव करना।

जो आर्यश्रावक इन पांच अंगो से अपने बंधु-बाधवों की पूजा करता है, उस पर वे पांच प्रकार का अनुग्रह करते हैं :—

(१) उस पर यकायक सकट आ पड़ने पर वे उसकी रक्षा करते हैं;

(२) सकट-काल मे वे उसकी संपत्ति की भी रक्षा करते है;

(३) विपत्ति में उसे धीरज वँधाते है;

(४) विपत्काल में उसका त्याग नही करते;

(५) उसके वाद उसकी सतान पर भी उपकार करते है।

१७. सेवको को सूचित करनेवाली जो नीचे की दिशा है, उसकी पूजा के पांच अग ये है :—

(१) उनकी शक्ति देखकर उनसे काम करने को कहना;

(२) उन्हे यथोचित वेतन देना;

(३) वीमार पड़ें तो उनकी सेवा-शुश्रूषा करना;

(४) यथावसर उन्हे उत्तम भोजन देना;

(५) समय-समय पर उनकी उत्तम सेवा के वदले उन्हे इनाम इत्यादि देना।

इन पाच अगो से मालिक अगर नौकरो की पूजा करता है, तो वे अपने मालिक पर पाच प्रकार का अनुग्रह करते है :—

(१) मालिक के उठने के पहले वे उठते है;

(२) मालिक के सोने के वाद वे सोते है;

(३) मालिक के माल-असवाव की चोरी नही करते;

(५) उत्तम रीति से काम करते है;

(५) अपने मालिक का यश गाते है।

१८. साधु-सतो की जो ऊपर की दिशा है, उसकी पूजा के ये पांच अंग है :—

(१) शरीर से आदर करना;

(२) वचन से आदर करना;

(३) मन से आदर करना;

(४) भिक्षा के लिए आवें तो उन्हे किसी प्रकार की हानि न पहुँचाना;

(५) उन्हे उनके उपयोग की वस्तु देना।

इन पाच अंगों से जो आर्य श्रावक साधु-सतो की पूजा करता है, उसपर वे साधु-सत छै प्रकार का अनुग्रह करते हैं:—

(१) पाप से उसका निवारण करते हैं;

(२) कल्याणकारक लार्ग पर उसे ले जाते हैं;

(३) प्रेमपूर्वक उस पर दया करते हैं;

(४) उसे उत्तम धर्म की शिक्षा देते हैं;

(५) शका-निवारण करके उसके मन का समाधान करते हैं;

(६) उसे सुगति का मार्ग दिखा देते हैं।

१९. दान, प्रिय वचन, अर्थचर्या और समानात्मकता अर्थात् दूसरो को अपने समान समझना, ये **लोक-संग्रह** के चार साधन है। बुद्धिमान् मनुष्य इन चारों साधनों का उपयोग करके जगत् में उच्चपद प्राप्त करता है।

१—१६. बु. च. (सिगालोवाद सुत्त)

चार सहवास

१. सहवास चार प्रकार का होता है :—

(१) शव, शव के साथ वास करता है;

(२) शव देवी के साथ सवास करता है;

(३) देव शव के साथ संवास करता है;

(४) देव, देवी के साथ सवास करता है ।

२. जिस घर में पति हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, शराबी, दु.शील, पापी, कृपण और कटुभापी होता है; और उसकी पत्नी भी वैसी ही दुष्टा होती है, वहां शव, शव के साथ वास करता है।

३. जिस घर में पति हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, शराबी, दु शील, पापी, कृपण और कटुभाषी होता है; और उसकी पत्नी अहिंसक, अचोर, सदाचारिणी, सच्ची, नशा न करनेवाली, सुशीला, पुण्यवती, उदार और मधुरभाषिणी होती है, वहा शव देवी के साथ संवास करता है ।

४. जिस घर में पति अहिंसक, अचोर, सदाचारी, सच्चा, मद्य-विरत, सुशील, पुण्यात्मा, उदार और मधुरभापी होता है; और उसकी पत्नी हिंसक, चोर, दुराचारिणी, झूठी, नशा करने-वाली, दुःशीला, पापिनी, कजूस और कटुभाषिणी होती है, वहां देव शव के साथ सहवास करता है ।

५. जिस घर में पति और उसकी पत्नी दोनों ही अहिंसक, अचौर, सदाचार-रत, नशाविरत, सुशील, पुण्यवत, उदार और मधुरभाषी होते हैं, वहां देव देवी के साथ सहवास करता है।

१—५. अ. नि. (४ : २ . १ : ३)

मित्र और अमित्र

१. जो मद्यपानादि के समय या आखो के सामने प्रिय बन-जाता है, वह सच्चा मित्र नही। जो काम निकलजाने के बाद भी मित्र बना रहता है वही मित्र है।

२. इन चारो को मित्र के रूप में अमित्र समझना चाहिए :-

(१) दूसरो का धन हरण करनेवाला;

(२) कोरी बातें बनानेवाला;

(३) सदा मीठी-मीठी चाटुकारी करनेवाला,

(४) हानिकारक कामो में सहायता देनेवाला।

३. जो बुरे काम में अनुमति देता है, सामने प्रशंसा करता है, पीठ पीछे निंदा करता है, वह मित्र नही, अमित्र है।

४. जो मद्यपान-जैसे प्रमाद के कामो में साथ और आवारा-गर्दी में प्रोत्साहन देता है और कुमार्ग पर ले जाता है वह मित्र नही, अमित्र है। ऐसे शत्रुरूपी मित्र को खतरनाक रास्ते की भाति छोड़ देना चाहिए।

५. वास्तविक सुहृद इन चार प्रकार के मित्रो को समझना चाहिए :—

(१) सच्चा उपकारी;

(२) सुख-दु ख में समान साथ देनेवाला;

(३) अर्थप्राप्ति का उपाय बतलानेवाला,

(४) सदा अनुकंपा करनेवाला ।

६. जो प्रमत्त, अर्थात् भूल करनेवाले की और उसकी संपत्ति की रक्षा करता है, भयभीत को शरण देता है, और सदा अपने मित्र का लाभ दृष्टि मे रखता है, उसे उपकारी सुहृद समझना चाहिए ।

७. जो अपना गुप्त भेद मित्र को बतला देता है, मित्र की गुप्त बात को गुप्त रखता है, विपता में मित्र का साथ देता है, और उसके लिए अपने प्राण भी होम देने को तैयार रहता है, उसे ही सच्चा सुहृद समझना चाहिए ।

८. जो पाप का निवारण करता है, पुण्य का प्रवेश कराता है, और सुगति का मार्ग बतलाता है वही 'अर्थ-आख्यायी', अर्थात् अर्थप्राप्ति का उपाय बतानेवाला सच्चा सुहृद है ।

९. जो मित्र की बढ़ती देखकर प्रसन्न होता है, मित्र की निंदा करनेवाले को रोकता है, और प्रशंसा करने पर प्रशंसा करता है, वही सच्चा अनुकंपक मित्र है ।

ऐसे मित्रों की सत्कारपूर्वक माता-पिता और पुत्र की भांति सेवा करनी चाहिए ।

*

१०. जगत् में विचरण करते-करते अपने अनुरूप यदि कोई सत्पुरुष न मिले, तो दृढ़ता के साथ अकेला ही विचरे; मूढ़ के साथ मित्रता नही निभ सकती ।

*

११. जो छिद्रान्वेषण किया करता है, और मित्रता टूट जानें के भय से सावधानी के साथ बर्तता है, वह मित्र नही है ।

पिता के कंधे पर बैठकर जिस प्रकार पुत्र विश्वस्त रीति से सोता है उसी प्रकार जिसके साथ विश्वासपूर्वक बर्ताव किया जा सके, और दूसरे लोग जिसे फोड न सके, वही सच्चा मित्र है।

❋

१२. अकेला विचरना अच्छा है, किंतु मूर्ख मित्र का सहवास अच्छा नहीं।

❋

१३. यदि कोई होशियार, सुमार्ग पर चलनेवाला और धैर्य-वान् साथी मिल जाय, तो तमाम विघ्न-बाधाओ को झेलते हुए भी उसके साथ रहना चाहिए।

१—६ दी. नि (सिगालोवाद सुत्त) १०. ध. प. (बाल वग्गो) ११ सु नि. (हिरि सुत्त) १२ जु. च (पारिलेयक सुत्त) १३. सु नि. (खग्गविसाण सुत्त)

जाति नैसर्गिक कैसी ?

१. जाति मत पूछ, तू तो बस, एक आचरण पूछ। देख, आग चाहे जैसे काष्ठ से पैदा होती है। इसी प्रकार नीचकुल का मनुष्य भी धृतिमान्, सुविज्ञ और निष्पाप मुनि होता है।

*

२. तो क्या तुम ऐसा मानते हो कि यहां मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा विविध जातियो के सौ मनुष्यो को एकत्रित करे और उनसे कहे कि, "आप सब, जो क्षत्रिय-कुल से, ब्राह्मण-कुल से और राजन्य-कुल से उत्पन्न है, यहा आवे—और साखू की या शाल वृक्ष की अथवा चन्दन की या पद्मकाष्ठ की अरणी लेकर आग बनावे, तेज पैदा करे—

और, आप लोग भी आवे, जो चाण्डाल-कुल से, निषाद-कुल से, बसोर-कुल से, रथकार-कुल से और पुक्कस-कुल से उत्पन्न हुए हैं, और कुत्ते के पीने की, सूअर के पीने की कठौती (कठरी), धोबी की कठौती की या रेड की लकड़ी की अरणी लेकर आग बनावें, तेज पैदा करे"—

तो क्या तुम मानते हो कि क्षत्रिय-ब्राह्मण-वैश्य-शूद्रकुलो से उत्पन्न पुरुषो-द्वारा साखू-शाल-चन्दन-पद्म की अरणी लेकर जो आग उत्पन्न की गई है, जो तेज पैदा किया गया है, वही अर्चिमान् (लौवाली), वर्णवान् और प्रभास्वर अग्नि होगी ?

और, चाण्डाल-निषाद-बसोर-रथकार-पुक्कस-कुलोत्पन्न पुरुषो-द्वारा श्वपान-कठरी की, शूकर-पान-कठरी की तथा रेंड-काष्ठ की अरणी लेकर जो आग उत्पन्न की गई है, जो तेज पैदा किया गया है, वह अर्चिमान्, वर्णवान् और प्रभास्वर अग्नि न होगी ? क्या उस आग से अग्नि का काम नही लिया जा सकेगा ?

※

३. यह तो तुम जानते ही हो कि जीव-जन्तुओ में एक दूसरे से बहुत-सी विभिन्नताएँ और विचित्रताएँ पाई जाती है, और उनमें श्रेणियां भी अनेक है ।

इसी प्रकार वृक्षो और फलो मे भी विविध प्रकार के भेद-प्रभेद देखने मे आते है, उनकी जातिया भी कई प्रकार की है।

देखो न साप कितनी जातियो के है ! जलचरो और नभचरो के भी असख्य स्थिर भेद है, जिनसे उनकी जातिया लोक में भिन्न-भिन्न मानी जाती है ।

४. परन्तु मनुष्यो मे ? मनुष्यो के शरीर मे तो ऐसा कोई भी पृथक् चिह्न (लिंग), भेदक चिह्न कही देखने में नही आता । उनके केश, सिर, कान, आख, मुख, नाक, गर्दन, कधा, पेट, पीठ, हथेली, पैर, नाखून आदि अगो में कहा है वैसी स्थिर विभिन्नताएँ ?

५. जो मनुष्य गाय चराता है उसे हम चरवाहा कहेगे, ब्राह्मण नही ।

६. जो व्यापार करता है वह व्यापारी ही कहलायगा, और शिल्प करनेवाले को हम शिल्पी ही कहेगे, ब्राह्मण नही ।

७. दूसरो की परिचर्या करके जो अपनी जीविका चलाता है, वह परिचर ही कहा जायगा, ब्राह्मण नही ।

८. अस्त्र-शस्त्रों से अपना निर्वाह करनेवाला मनुष्य सैनिक ही कहा जायगा, ब्राह्मण नही।

९. अपने कर्म से कोई किसान है तो कोई शिल्पकार। कोई व्यापारी है तो कोई अनुचर। कर्म पर ही यह जगत् स्थित है। अपने कर्म से एक मनुष्य ब्राह्मण बन जाता है और दूसरा अब्राह्मण।

१०. प्राणि-हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, चुगलखोर, कटु-भाषी, बकवादी, लोभी, द्वेषी और झूठी धारणावाला चाहे ब्राह्मण हो चाहे क्षत्रिय अथवा वैश्य हो या शूद्र, मरने के बाद वह दुर्गति को प्राप्त होगा, नरकगामी होगा।

❋

११. क्या केवल ब्राह्मण ही प्राणि-हिंसा, चोरी, दुराचार, झूठ, चुगलखोरी, कटुवचन, बकवाद, लोभ और द्वेष से विरत होकर सुगति को प्राप्त हो सकता है? क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नही?

१२. क्या केवल ब्राह्मण ही वैर-रहित और द्वेष-रहित होकर मैत्री की भावना कर सकता है? क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं? नही, ऐसी भावना ब्राह्मण भी कर सकता है, क्षत्रिय भी कर सकता है, वैश्य भी कर सकता है और शूद्र भी कर सकता है।

१३. क्या ब्राह्मण ही मांगलिक स्नानचूर्ण लेकर नदी में मैल धो सकता है? क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नही?

१४. दो जुडवां भाई है। एक तो अध्ययनशील और उपनीत, किन्तु दुराचारी और पापी है; और दूसरा अन्-अध्ययनशील, अन्-उपनीत, किन्तु शीलवान् और धर्मात्मा है। इनमें से यज्ञ अथवा

आतिथ्य में प्रथम भोजन आप किसे करायेंगे ? उसी को ना, जो अन्-अध्ययनशील और अन्-उपनीत होते हुए भी शीलवान् और धर्मात्मा है ?

१५. माता-पिता के रज-वीर्य से जन्म लेनेवाला जीव न क्षत्रिय होता है, न ब्राह्मण—न वैश्य होता है, न शूद्र ।

*

१६. उच्चकुलवाला भी प्राणि-हिंसक, चोर, मिथ्याचारी, झूठा, चुगलखोर, कटुभाषी, बकवादी, लोभी और द्वेषी होता है। इसलिए मैं उच्चकुलीनता को श्रेय नहीं देता। साथ ही, उच्च-कुलीनता को मैं 'पापीय' भी नहीं कहता, क्योंकि उच्चकुलवाला मनुष्य भी अहिंसक, अचोर, मिथ्याचार-विरत, अद्वेषी आदि होता है ।

१७. नीचकुलोत्पन्न भी, इसी तरह, हिंसक होता है और अहिंसक भी; सच्चा होता है और झूठा भी; लोभी होता है और लोभ-विरत भी, द्वेषी होता है और अद्वेषी भी ।

*

१८. जिस आश्रय को लेकर आग जलती है, वही उसकी संज्ञा होती है। काष्ठ से जलनेवाली आग की संज्ञा काष्ठ-अग्नि, और गोमय (उपले) के आश्रय से जलनेवाली आग की संज्ञा गोमय-अग्नि होती है। किन्तु आग का काम इन सभी अग्नियों से लिया जा सकता है ।

*

१९. यवन और कम्बोज तथा दूसरे भी सीमान्त प्रदेशों में दो ही वर्ण होते हैं—आर्य और दास। मनुष्य वहां आर्य से दास

हो सकता है, और दास से आर्य। फिर इसका कोई अर्थ नहीं, कि अमुक वर्ण ही जन्मना श्रेष्ठ वर्ण है।

*

२०. जो मनुष्य जातिवाद और गोत्रवाद के बन्धन में बँधे हुए है, वे अनुपम विद्याचरण सम्पदा से दूर ही है।

*

---

१. बु. च. (अत्तदीप सुत्त). २. म. नि. (अस्सलायण सुत्तन्त) ३—१०. म. नि. (वासेट्ठ सुत्तन्त) ११—१५. म. नि. (अस्सलायण सुत्तन्त) १६—१८. म. नि. (फासुकारि सुत्तन्त) १९. म. नि. (अस्सलायण सुत्तन्त) २०. बु. च. (अम्बट्ठ सुत्त)

ब्राह्मण किसे कहे ?

१. ब्राह्मण मै उसे कहता हूँ, जो अपरिग्रही है। जिसने समस्त बंधन काटकर फेक दिये है, जो भय-विमुक्त हो गया है और जो सग एवं आसक्ति से विरत है, मै उसीको ब्राह्मण कहता हूँ।

२. जो विना चित्त विगाडे गाली, हनन और वधन को सहन करता है, क्षमा-वल ही जिसके साधन-सैनिको का सेनानी है, मैं उसीको ब्राह्मण कहता हूँ।

३. जो अक्रोधी है, व्रती है, शीलवान् है, वहुश्रुत है, सयमी है और अतिम शरीरवाला है, उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४. कमल के पत्ते पर जल की भाति, और आरे की नोक पर सरसो की तरह जो विषय-भोगो मे लिप्त नही होता, मैं उसे ही ब्राह्मण कहता हूँ।

५. चर-अचर सभी प्राणियो मे प्रहार-विरत हो जो न मारता है न मारने की प्रेरणा करता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

६. जो इस प्रकार की अकर्कश, आदरयुक्त और सत्यवाणी वोलता है कि जिससे जरा भी पीड़ा नही पहुँचती, मै उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

७. वड़ी हो चाहे छोटी, मोटी हो चाहे पतली, शुभ हो या अशुभ जो संसार में किसी भी विना दी हुई चीज को नहीं लेता उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

८. जिसने यहां पुण्य और पाप दोनो की ही आसक्ति छोड़ दी है, और जो शोकरहित, निर्मल और परिशुद्ध है, उसे ... ब्राह्मण कहता हूँ।

९. मानुष भोगो का लाभ छोड़ दिव्य भोगो के लाभ को भी जिसने लात मार दी है, किसी भी लाभ-लोभ मे जो आसक्त नही, उसे ही मै ब्राह्मण कहता हूँ।

१०. राग और घृणा का जिसने त्याग कर दिया है, जिसका स्वभाव शीतल है, और जो क्लेशरहित है ऐसे सर्वलोकविजयी वीर पुरुष को मै ब्राह्मण कहता हूँ।

११. जिसके पूर्व, पश्चात् और मध्य मे कुछ नही है, और जो पूर्णतया परिग्रह-रहित है, उसे ही मै ब्राह्मण कहता हूँ।

*

१२. जो ध्यानी, निर्मल, स्थिर, कृतकृत्य और आस्रव-(चित्तमल) रहित है, जिसने सत्य को पा लिया है, उसे मै ब्राह्मण कहता हूँ।

१३. जो न मन से पाप करता है, न वचन से और न काया से; मन, वचन और काया पर जिसका संयम है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

१४. न जटा रखाने से कोई ब्राह्मण होता है, न अमुक गोत्र से, और न जन्म से ही। जिसने सत्य और धर्म का साक्षात्कार कर लिया, वही पवित्र है, वही ब्राह्मण है।

१५. जो गंभीर प्रज्ञावाला है, मेधावी है, मार्ग और अमार्ग का ज्ञाता है, और जिसने सत्य पा लिया है, उसे मे ब्राह्मण

१६. जिसने तृष्णा का क्षय कर दिया है, जो भली भांति जानकर अकथ पद का कहनेवाला है, और जिसने अगाध अमृत प्राप्त कर लिया है, उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

१७. जो पूर्वजन्म को जानता है, सुगति और अगति को जो देखता है, और जिसका पुनर्जन्म क्षीण हो गया है, तथा जो अभिज्ञा-(दिव्यज्ञान) परायण है, उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

*

१८. मूर्खों की धारणा में यह चिरकाल से घुसा हुआ है कि 'ब्राह्मण जन्म से होता है'; ज्ञानी पुरुष यह कदापि नहीं कहेंगे कि ब्राह्मण जन्म से होता है।

१९. अमुक माता की योनि से उत्पन्न होने के कारण मैं किसी मनुष्य को ब्राह्मण नहीं कहता।

२०. जो पुरोहिताई से अपनी जीविका चलाता है वह ब्राह्मण नहीं, याचक है।

*

२१. ब्राह्मण पर प्रहार नहीं करना चाहिए, और ब्राह्मण को भी उस प्रहारक पर कोप नहीं करना चाहिए। ब्राह्मण पर जो प्रहार करता है उसे धिक्कार है। और उसे भी धिक्कार है, जो उसके लिए कोप करता है।

*

२२. प्राचीन ब्राह्मणों के पास न पशु थे, न सुवर्ण, न धान्य। उनके पास तो एक स्वाध्याय का ही धन-धान्य था। वे तो ब्रह्मनिधि के धनी थे।

२३. वे संयतात्मा और तपस्वी होते थे। विषय-भोगों को छोड़कर वे सदा ज्ञान और ध्यान में ही निरत रहते थे।

२४. विविध वर्ण के वस्त्रों, शैयाओं और अतिथिशालाओं से समृद्ध राष्ट्र उन ब्राह्मणो को अभिवंदन करते थे ।

२५. ब्राह्मण अवध्य थे, अजेय थे और धर्म से अभिरक्षित थे ।

२६. प्राचीन काल के वे ब्राह्मण अड़तालीस वर्षतक अखड कौमार ब्रह्मचर्य पालत करते थे ।

२७. उस युग के ब्राह्मण विद्या और आचरण की शोध मे रहते थे ।

२८. वे लोग ब्रह्मचर्य, शील, अकुटिलता, मृदुता, तपस्या, सुप्रीति, अहिंसा, और क्षमा के प्रशंसक थे ।

*

२९. ब्राह्मण कौन ? जो निष्पाप है, निर्मल है, निरभिमान है, सयत है. वेदातपारगत है, ब्रह्मचारी है, ब्रह्मवादी है और धर्मप्राण है, वही ब्राह्मण है ।

*

३०. जिसने सारे पाप अपने अंतःकरण से दूर कर दिये, अहंकार की मलिनता जिसकी अतरात्मा का स्पर्श भी नही कर सकती, जिसका ब्रह्मचर्य परिपूर्ण है, जिसे इस लोक के किसी भी विषय की तृष्णा नही, जिसने अपनी अंतर्दृष्टि से ज्ञान का अंत देख लिया, वही अपने को यथार्थरीति से ब्राह्मण कह सकता है ।

१—११ म. नि. (वासेठ्ठ सुत्तन्त) १२—१७ ध. प. (ब्राह्मण वग्गो) १८—२०. म. नि. (वासेठ्ठ सुत्तन्त) २१. ध. प. (ब्राह्मण वग्गो) २२—२८. सु. च. (ब्राह्मण धम्मिय सुत्त) २९. वि. पि. (महावग्ग) ३०. वि. पि. (महावग्ग)

चांडाल कौन ?

१. क्रोधी, वैर माननेवाला, पापी, गुणीजनो को दोष देनेवाला, मिथ्या दृष्टि रखनेवाला और मायावी मनुष्य ही वृषल, अर्थात् चाडाल है।

२. जो प्राणियो का वध करता है, प्राणियो के ऊपर जो दयाभाव नही रखता, उसे चाडाल समझना चाहिए।

३. जो गावो और नगरो को लूटता और वीरान कर देता है, दुनिया में जो लुटेरे के नाम से पहिचाना जाता है, उसे चाडाल समझना चाहिए।

४. जो मनुष्य कर्ज तो लेता है, पर जब लेनदार मागने आता है तो साफ नट जाता है और कहता है कि मुझे तो तेरा कुछ देना ही नही, उसे चाडाल समझना चाहिए।

५. जो अपने लिए, दूसरो के लिए अथवा पैसे के लिए झूठ बोलता है, उसे चाडाल समझना चाहिए।

६. जो बलात्कार से अथवा प्रेम से अपने इष्टमित्रो की स्त्रियों के साथ व्यभिचार करता है, उसे चाडाल समझना चाहिए।

७. जो समर्थ होते हुए भी अपने वृद्ध माता-पिता का पालन-पोषण नही करता, उसे चाडाल समझना चाहिए।

८. लाभ का हितकर उपाय पूछने पर जो हानिकारक उपाय सुझाता है, अथवा सदिग्ध वचन बोलता है, उसे चाडाल समझना चाहिए।

९. जो दूसरों के घर जाकर उनका आतिथ्य स्वीकार करता है, पर यदि वे लोग कभी उसके घर आ जायँ, तो वह उनका आदर-सत्कार नही करता, ऐसा मनुष्य चाण्डाल नही तो क्या है?

१०. जो अहंभाव के कारण पतित होकर आत्मस्तुति और परनिंदा करता है, उसे चांडाल समझना चाहिए।

११. जो मनुष्य क्रोधी, कृपण, मत्सरयुक्त, शठ और निर्लज्ज होता है और जिसे लोकनिंदा के भय की तनिक भी पर्वा नही, उसे चाडाल समझना चाहिए।

१२. जो अनर्ह (अयोग्य) होकर भी अपने को योग्य समझता है, वह ब्रह्मलोक में चोर है, और ऐसे पुरुष को वृषलाधम (नीचातिनीच चांडाल) कहते है।

१३. केवल जन्म से कोई वृषल या चांडाल नही होता, और न जन्म से कोई ब्राह्मण ही होता है। कर्म से मनुष्य चाडाल होता है, और कर्म से ही ब्राह्मण।

१—१३. सु. नि. (वसलसुत्त)

भिक्षु

१. जिस भिक्षुने शंकाओ का प्रवाह पार कर लिया है, जिसने तृष्णा का शल्य निकालकर फेक दिया है, निर्वाण में जिसकी लौ लगी हुई है, जो निर्लोभी है और सदेवक जगत् का नेता है, उसे **मार्गजिन** भिक्षु कहते हैं।

२. निर्वाण-पद को जानकर जो धर्मोपदेश तथा धर्म का विवेचन करता है, उस शका-निवारक मुनि को **मार्गदेशक** भिक्षु कहते हैं।

३. उत्तम रीति से उपदिष्ट धर्ममार्ग मे जो संयमी है, स्मृतिमान् है और निर्दोष पदार्थों का सेवन करता है, उसे **मार्गजीवी** भिक्षु कहते हैं।

४. साधुओ का वेश धारण करके सघ में जबर्दस्ती घुस जानेवाला जो धृष्ट भिक्षु गृहस्थो की अपकीर्त्ति फैलाता है और जो मायावी, असयमी तथा ढोगी होते हुए भी साधु के रूप में दुनिया को ठगता फिरता है, उसे **मार्गदूषक** भिक्षु कहते हैं।

*

५. संघ में यदि कोई गृहासक्त, पापेच्छ, पाप-सकल्पी और पापाचारी भिक्षु देखने में आवे, तो तुम सब मिलकर उसका बहिष्कार करदो; उस कचरे को फेंकदो, सघ के उस सडे हुए हिस्से को छील डालो।

*

६. काया और वचन से जो शान्त है, भलीभांति जो समाहित अर्थात् समाधियुक्त है, जिसने जगत् के तमाम लोभो को अस्वीकार कर दिया है, उस भिक्षु को 'उपशान्त' भिक्षु कहते है ।

❋

७. जो भिक्षु अपनी तरुणाई में बुद्ध के शासन (बुद्ध-धर्म) में योग देता है, वह इस लोक को इस प्रकार प्रकाशित करता है, जैसे मेघों से मुक्त चन्द्रमा ।

❋

८. अतिशय प्रमोदयुक्त और बुद्ध-शासन में प्रसन्नचित्त भिक्षु उस सुखमय प्रशान्त पद को प्राप्त कर लेता है, जिसमें मनुष्य की समस्त वासनाएँ शान्त हो जाती है ।

❋

९. जो धर्म में रमण करता है, धर्म मे रत रहता है, और धर्म का चिन्तन और धर्म का अनुसरण करता है, वह भिक्षु सद्धर्म से पतित नही होता ।

❋

१०. जो भिक्षु मैत्री भावना से विहार करता है और बुद्ध के शासन (धर्म) मे श्रद्धावान् रहता है, वह सुखमय शान्तपद को प्राप्त कर लेता है, उसकी समस्त वासाएँ समाप्त हो जाती है ।

❋

११. भिक्षु को अपनी निन्दा सुनकर अस्वस्थ और स्तुति सुनकर गर्वोन्मत्त नही होना चाहिए । लोभ, मात्सर्य, क्रोध और निन्दा का उसे सदा के लिए परित्याग कर देना चाहिए ।

१.—४. सु. नि. (चुन्द सुत्त) ५. सु. नि. (धम्मचरिय सुत्त) ६—१०. ध. प. (भिक्खुवग्गो) ११. सु. नि. (तुवट्टक सुत्त)

सम्यक् परिव्राजक

१. जो लौकिक एव दिव्य कामसुख में आसक्त नही, वही धर्मज्ञ भिक्षु ससार का अतिक्रमण करके सम्यक् परिव्राजक हो सकता है।

२. जो भिक्षु निन्दा, क्रोध और कृपणता का त्याग कर देता है, वह अनुरोध-विरोध से मुक्त होकर इस जगत् मे सम्यक् परिव्राजक कहा जाता है।

३. प्रिय और अप्रिय का त्याग करके जो सर्वत्र अनासक्त, अनाश्रित तथा संयोजनो से विमुक्त है वही इस जगत् में सम्यक् परिव्राजक है ।

४. उपाधि को जो निस्सार समझता है और ग्रहण करने में जो लोभ (छन्दराग) का निरसन करता है, इस जगत् में वही सम्यक् परिव्राजक है ।

५. भलीभाति धर्म का तत्व समझकर जो मन, वचन और कर्म से दूसरो के साथ अविरोध रीति से बर्ताव करता है, जो निर्वाण-पद की इच्छा रखता है, उसीको मै इस जगत् में सम्यक् परिव्राजक कहूँगा ।

६. लोभ और आसक्ति को छोड़कर जो छेदन-बन्धन से विरत हो गया है, शंकाओ को पार कर गया है, और जिसके हृदय से तृष्णा का शल्य निकल गया है, वही भिक्षु इस जगत् में सम्यक् परिव्राजक है ।

७. अपना कर्तव्य धर्म समझकर जो भिक्षु किसी भी प्राणी की हिंसा नही करता, वही इस जगत् मे सम्यक् परिव्राजक है ।

८. जिसके आस्रव (दोप) क्षीण तथा अहंकार नष्ट हो गया है, जो कामसुखो को लात मारकर ससार-समुद्र को पार कर गया है और जो दान्त, शान्त और स्थिरात्मा है, वही इस जगत् मे सम्यक् परिव्राजक है ।

९. जो अतीत और अनागत सस्कारो की कल्पना को पार कर गया है, जिसकी प्रज्ञा अत्यन्त विशुद्ध है और जो समस्त आयतनो से मुक्त हो गया है वही इस जगत् मे सम्यक् परिव्राजक है ।

*

१०. 'आर्यसत्यो' को जानकर और धर्म को समझकर तथा आस्रवो का विनाश स्पष्टतापूर्वक देखकर जो समस्त उपाधियों का क्षय कर देता है, वही इस जगत् मे सम्यक् परिव्राजक है ।

*

११. ऊपर, नीचे और चारो ओर अथवा मध्य मे जो भी दु.खकारक कर्म है, उसे त्यागकर जो विचारपूर्वक वर्तता है, जिसने माया, मान, क्रोध और नामरूप को नष्ट कर दिया है उस पूर्णत्वप्राप्त पुरुष को सम्पक् परिव्राजक कहते है ।

१—१०. सु. नि. (सम्मा परिब्बाजनिय सुत्त) ११. सु. नि. (सभिय सुत्त)

प्रश्नोत्तरी

१. प्रश्न—(१) जूठन क्या है ?
(२) दुर्गन्ध क्या है ?
(३) मक्खिया क्या है ?

उत्तर—(१) लोभ और राग जूठन है।
(२) द्रोह दुर्गन्ध है।
(३) अकुशल वितर्क, अर्थात् बुरे विचार मक्खिया है।

❊

२. प्रश्न—(१) जगत् का सयोजन क्या है ?
(२) उसकी विचारणा (चिंता) क्या है ?
(३) किस धर्म के नाश से उसे निर्वाण प्राप्त होता है ?

उत्तर—(१) लोभ या तृष्णा जगत् का सयोजन है।
(२) वितर्क उसकी विचारणा है।
(३) तृष्णा के नाश से जगत् को निर्वाण प्राप्त होता है ?

❊

३. प्रश्न—किस प्रकार के वर्ताव से मनुष्य के विज्ञान (चित्त की धारा) का निरोध होता है ?

उत्तर—आंतरिक और बाह्य वेदनाओं का अभिनंदन न करते हुए जो बर्तता है, उसका विज्ञान निरुद्ध हो जाता है।

※

४. प्रश्न—(१) यह जगत् किससे ढंका हुआ है?
(२) किसके कारण यह प्रकाशित नही होता?
(३) इसका अभिलेपन क्या है?
(४) इसे महाभय क्या है?

उत्तर—(१) यह जगत् अविद्या से ढँका हुआ है।
(२) मात्सर्य और प्रमाद के कारण यह प्रकाशित नही होता।
(३) वासना इसका अभिलेपन ह।
(४) जन्मादि दु ख इसका महाभय है।

५. प्रश्न—(१) चारो ओर जो ये प्रवाह बह रहे है, इनका निवारक क्या है?
(२) प्रवाहों का नियमन क्या है?
(३) ये प्रवाह किस वस्तु से रोके जा सकते है?

उत्तर—(१) जगत् में जो ये प्रवाह बह रहे है उनकी निवारक स्मृति है।
(२) स्मृति ही उन प्रवाहों की नियामक है।
(३) प्रज्ञा से वे रोके जा सकते है।

६. प्रश्न—'प्रज्ञा' और 'स्मृति' इन नामरूपों का निरोध कहा होता है?

उत्तर—नाम और रूप का पूर्णत· निरोध विज्ञान के निरोध से होता है।

७. प्रश्न—संसार की तरफ मनुष्य किस प्रकार देखे, कि जिससे मृत्युराज उसकी ओर न देख सके ?

उत्तर—सदैव स्मृति रखते हुए इस तरह देख कि जगत् शून्य है। इस भाति आत्मदृष्टि को त्याग देनेवाला मनुष्य मृत्यु को पार कर जाता है। इस प्रकार ससार की तरफ देखनेवाले मनुष्य की ओर मृत्युराज नही देखता।

*

८. प्रश्न—जो कामोपभोगो से विमुक्त है, तृष्णा से रहित है, और संशयो को पार कर गया है, उसका मोक्ष किस प्रकार का होता है ?

उत्तर—जो कामोपभोगो से विमुक्त है, तृष्णा से रहित है और संशयो से पार होगया है, उसके लिए मोक्ष-जैसा कोई पदार्थ रहता ही नही। (वही उसका मोक्ष है।)

९. प्रश्न—(१) वह वासना-रहित होता है, या उसकी कोई वासना बाकी रहती है ?

(२) वह प्रज्ञावान् होता है, या प्रज्ञा की कल्पना करनेवाला ?

उत्तर—(१) वह वासना-रहित होता है, उसकी कोई वासना शेष नही रहती।

(२) वह प्रज्ञावान् होता है, प्रज्ञा की कल्पना करनेवाला नही। वह मुनि सर्वथा कामभव में अनासक्त और अकिंचन होता है।

*

१०. प्रश्न—महान् भयानक बाढ़ के बीचोबीच ससार के मध्यभाग में खड़े हुए जरा-मृत्युपरायण मनुष्य के लिए कौन-सा द्वीप शरणस्थान है ?

उत्तर—आकिंचन्य और अनादान (ग्रहण न करना) ही उसके लिए महान् विशाल द्वीप है, जिसे मैं जरा और मृत्यु का क्षय करने-वाला 'निर्वाण' कहता हू ।

यह जानकर जो स्मृतिमान् लोग इसी जन्म में परिनिर्वाण प्राप्त कर लेते हैं, वे मार (विषय) के वश नही होते, वे मार का अनुसरण नही करते ।

*

११. प्रश्न—इस जगत् में लोग अनेको को मुनि कहते है, पर क्या उनका यह कहना ठीक है ? वे ज्ञानसंपन्न पुरुष को मुनि कहते हैं या केवल व्रतादि उपजीविका-संपन्न को ?

उत्तर—दृष्टि से, श्रुति से अथवा ज्ञान से कोई मुनि नही होता, ऐसा पंडितजन कहते है । मन के समस्त विरोधों का नाश करके जो निर्दु:ख और निस्तृष्ण होकर रहता है उसे ही मैं मुनि कहता हूँ ।

१२. प्रश्न—(१) इस जगत् मे किसे संतुष्ट कहना चाहिए ?
(२) तृष्णाएँ किसे नही हैं ?
(३) कौन दोनों अंतों को जानकर मध्य में स्थित हो प्रज्ञा से लिप्त नही होता ?
(४) 'महापुरुष' किसे कहते है ?
(५) इस जगत् मे कौन तृष्णा को पार करता है ?

उत्तर—(१) जो कामोपभोगो का परित्याग करके ब्रह्मचारी, वीततृष्ण और सदैव स्मृतिमान् रहता है, उसे ही सतुष्ट कहना चाहिए ।

(२) उसे ही तृष्णाएँ नही सताती ।

(३) वह दोनो अंतो को जानकर मध्य मे स्थित हो प्रज्ञा से लिप्त नही होता ।

(४) उसे ही मैं 'महापुरुष' कहता हूँ ।

(५) इस जगत् में वही महापुरुष तृष्णातरगिणी को पार कर सकता है ।

१३. प्रश्न—इस जगत् में जो ये अनेक तरह के दु ख दिखाई देते हैं, वे कहा से उत्पन्न होते है ?

उत्तर—ये दु ख उपाधियो से उत्पन्न होते हैं । जो अविद्वान् मदबुद्धि मनुष्य उपाधिया करते हैं वे बारबार दु.ख भोगते हैं । अतएव दु ख का उत्पत्ति-कारण जाननेवाले बुद्धिमान् मनुष्य को उपाधि नही करनी चाहिए ।

१४. प्रश्न—बुद्धिमान् मनुष्य किस तरह ओघ (भवसागर) जन्म, जरा, शोक, परिदेव और दु ख को पार करते हैं ?

उत्तर—ऊपर, नीचे, चारो ओर और मध्य में जो कुछ भी दिखाई देता है, उसमें से तृष्णा, दृष्टि और विज्ञान (चित्तधारा) को हटा देनेवाला पुरुष संसार पर आश्रय नही रखता ।

इस प्रचार चलनेवाला स्मृतिवान्, अप्रमत्त और विद्वान् भिक्षु ममत्व को छोड़कर इसी लोक मे जन्म, जरा, शोक, परिदेव और दु.ख का त्याग कर देता है ।

जो ब्राह्मण वेदपारग, अकिंचन और कामभव में अनासक्त होगा, वही इस संसार-सागर को विश्वासपूर्वक पार कर सकेगा।

इस जगत् में वही विद्वान् और वेदपारग मनुष्य है, वही भव और अभव में आसक्ति का त्याग कर सकता है, वही निस्तृष्ण, निर्दु:ख और वासना-रहित है, और वही जन्म, जरा और मृत्यु को पार कर सकता है।

*

१५. प्रश्न—किस हेतु से प्रेरित हो ऋषि, क्षत्रिय, ब्राह्मण और अन्य मनुष्य इस जगत् मे देवताओ को उद्देश करके भिन्न-भिन्न यज्ञ करते है ?

उत्तर—ये सब इसलिए भिन्न-भिन्न यज्ञ करते है कि उनका पुनर्जन्म हो और बारबार जरा और मृत्यु के ग्रास बने।

१६. प्रश्न—यजकर्म में अप्रमादी रहकर क्या ये लोग जन्म और जरा को पार कर सकते है ?

उत्तर—ये लोग देवताओ की प्रार्थना करते है, स्तुति करते है, आशा प्रगट करते हैं, हवन करते है, और अपने लाभ के लिए कामसुख की याचना करते है। यज्ञ में फँसे हुए ये भवलोभासक्त मनुष्य जन्म और जरा को कदापि पार नहीं कर सकते ?

१७. प्रश्न—तो फिर देवलोक और नरलोक मे कौन मनुष्य जन्म और जरा को पार कर सकता है ?

उत्तर—दुनिया की छोटी-बड़ी सभी वस्तुओं को प्रज्ञा से जानकर जिस मनुष्यने अपनी तमाम तृष्णाएँ नष्ट करदी है, जो शान्त, वीतधूम, रागादि-विरत और आशा-रहित है, वही जन्म और जरा को पार कर सकता है।

१८. प्रश्न—राग और दोष कहा से उत्पन्न होते है ? आरति, रति और हर्ष कहा से पैदा होते है ?

मन में वितर्क कहा से होता है, जिससे यह मन उस पतग के समान मँडराता रहता है, जिसे बालक इधर-उधर उड़ाया करते है ?

उत्तर—यही आत्मा राग और दोष का निदान है। इसीसे अरति, रति और हर्ष उत्पन्न होते है। इसीसे मन में वितर्क उत्पन्न होता है। यह उस पतग के समान है जिसे अबोध बालक इधर-उधर उडाया करते है। ये राग आदि स्नेह से आत्मा में न्यग्रोध (बरगद) के स्कन्ध के समान उत्पन्न होते है और कामो में बारबार 'मालू' नामक लता की भाति लपटते रहते है।

जो इनका निदान जानते है, वे आनन्द-लाभ करते है, और इस ससार-समुद्र को, जो अत्यन्त दुस्तर है, पार करके निर्वाण प्राप्त कर लेते है, और उनका पुनर्जन्म नही होता।

*

१९. प्रश्न—(१) श्रेष्ठ धन कौन-सा है ?
(२) सुचिर सुख देनेवाला कौन है ;
(३) जगत् में अत्यन्त स्वादिष्ट कौन पदार्थ है ?
(४) किस प्रकार का जीवन व्यतीत करनेवाला श्रेष्ठ पुरुष है ?

उत्तर—(१) श्रद्धा ही श्रेष्ठ धन है।
(२) धर्म ही सुचिर सुख देनेवाला है।
(३) सत्य ही ससार में अत्यन्त स्वादिष्ट पदार्थ है।

(४) प्रज्ञा से जीवन-निर्वाह करनेवाला पुरुष ही संसार मे श्रेष्ठ है।

२०. प्रश्न—(१) ओघ को कैसे पार कर सकते है ?

(२) मृत्यु-महोदधि के उस पार किसके सहारे जा सकते है ?

(३) दु ख का अन्त किससे कर सकते है ?

(४) परिशुद्धि किससे होती है ?

उत्तर—(१) श्रद्धा से ओघ को पार कर सकते है।

(२) अप्रमाद के सहारे मृत्यु महोदधि के उस पार जा सकते है।

(३) वीर्य (उद्योग) से दुःख का अन्त हो सकता है।

(४) और, प्रज्ञा से परिशुद्धि प्राप्त हो सकती है।

२१. प्रश्न—(१) प्रज्ञा किससे प्राप्त होती है ?

(२) धन किससे मिलता है ?

(३) कीर्ति किससे प्राप्त होती है ?

(४) किस प्रकार इस लोक से परलोक पहुँचकर मनुष्य शोक नही करता ?

उत्तर—(१) श्रद्धावान् प्रमाद-विरहित कुशल पुरुष निर्वाण की प्राप्ति के लिए आर्हत धर्म की परिसेवा (उपासना) से प्रज्ञा प्राप्त करता है।

(२) प्रत्युपकारी सहनशील पुरुष अप्रमाद के द्वारा विपुल धन प्राप्त करता है।

(३) सत्व से वह कीर्त्ति-लाभ करता है।

(४) जिस गृहस्थ में सत्य, धर्म, धृति और त्याग ये चार धर्म होते हैं, वही इस लोक से परलोक में जाकर शोक नही करता।

※

२२. प्रश्न—(१) किन गुणो के प्राप्त करने से मनुष्य भिक्षु होता है ?

(२) भिक्षु सुशान्त कैसे होता है ?

(३) दान्त किसे कहते हैं ?

(४) बुद्ध के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर—(१) जो स्वय अपने तैयार किये हुए मार्ग पर परिनिर्वाण प्राप्त करता है, जिसे कोई शंका नही रहती, जो शाश्वत दृष्टि और उच्छेद-दृष्टि का त्याग करके कृतकृत्य हो जाता है और पुनर्जन्म का क्षय कर देता है, वही भिक्षु है।

(२) जो हर जगह उपेक्षायुक्त और स्मृतिमान् होकर इस अखिल जगत् में किसी को भी हिंसा नही करता, जो उत्तीर्ण और विमुक्त हो गया है, और जिसमे न राग रहा है न द्वेष, वही सुशान्त है।

(३) इस अखिल जगत् मे जिसकी इद्रिया बाहर से तथा भीतर से वश मे होगई हैं, और जो भावितात्मा पुरुष उत्तम लोकों

को जानकर मृत्यु की प्रतीक्षा करता है, वही **दांत** है।

(४) समस्त विकल्प, संसार तथा जन्म-मरण को जानकर और विगतरज, निष्पाप एवं विशुद्ध होकर जो जन्मक्षय का लाभ करता है, उसे **बुद्ध** कहते हैं।

*

२३. प्रश्न—(१) मनुष्य किन गुणों की प्राप्ति से **ब्राह्मण** होता है?

(२) मनुष्य **श्रमण** कैसे होता है?

(३) **स्नातक** के क्या लक्षण हैं?

(४) **नाग** किसे कहते हैं?

उत्तर—(१) जो मनुष्य समस्त पापो को हृदय से निकाल बाहर कर देता है, जो विमल, समाहित और स्थितात्मा होकर संसार-सागर को लांघ जाता है, जो 'केवली' और अनाश्रित होता है, उसे **ब्राह्मण** कहते हैं।

(२) पुण्य और पाप को त्यागकर जो पुरुष शात हो गया है, इहलोक और परलोक दोनो को जानकर जो विगतरज हो गया है, और जो जन्म तथा मरण के उस पार चला गया है, उसे **श्रमण** कहते हैं।

(३) जो समस्त जगत् मे बाहर और भीतर से तमाम पापों को पखारकर विकल्पबद्ध

देवताओ और मनुष्यो के बीच विकल्प को प्राप्त नही होता, उसे **स्नातक** कहते हैं।

(४) जो इस जगत् में एक भी पाप नही करता, और जो सभी सयोगो और बधनो को तोड़कर कही भी बद्ध नही होता, उस पुरुष को इन गुणो के कारण **'नाग'** कहते हैं।

❊

२७. प्रश्न—(१) **क्षेत्रजिन** किसे कहते हैं?

(२) मनुष्य **कुशल** कैसे होता है?

(३) **पंडित** के क्या लक्षण हैं?

(४) **मुनि** किसे कहते हैं?

उत्तर—(१) दिव्य, मानवी और ब्रह्मक्षेत्र—इन तीनों क्षेत्रो को जानकर जो तीनो के मूल बधन से मुक्त हो गया है, उसे **क्षेत्रजिन** कहते हैं।

(२) दिव्य, मानवी और ब्रह्मकोश—इन तीनों कोशो को जानकर जो तीनो के बंधन से मुक्त हो गया है, उसे **कुशल** कहते हैं।

(३) आध्यात्मिक (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन) और बाह्य आयतनो (रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श, धर्म) को जानकर जो विशुद्धप्रज्ञ मनुष्य पाप और पुण्य के उस पार चला गया है उसे **पंडित** कहते हैं।

(४) अखिल लोक में अध्यात्मविषयक और बाह्यविषयक तथा साधुओं और असाधुओ का धर्म जानकर जो आसक्ति के उस पार चला गया है, उसे **मुनि** कहते हैं। उसकी पूजा मनुष्य क्या देवता भी करते है।

*

२५. प्रश्न—(१) किन गुणो की प्राप्ति से मनुष्य **वेदपारग** कहलाता है ?

(२) मनुष्य **अनुविदित** कैसे होता है ?

(३) **वीर्यवान्** के क्या लक्षण है ?

(४) मनुष्य **आजन्य** कैसे होता है ?

उत्तर—(१) श्रमण और ब्राह्मणो के जितने वेद है उन सब को जानकर और उन्हे पार करके जो समस्त वेदनाओं के विषय में वीतराग हो जाता है, वह **वेदपारग** है।

(२) भीतर और बाहर से रोगो का मूल यह संसार और नामरूप है, अत. सर्व रोगो के मूल बधन से जो मुक्त हो जाता है उसे **अनुविदित** कहते हैं।

(३) जो इस लोक मे समस्त पापो से विरत हो गया और जिसने निरय-दु ख को पार कर लिया है, वह **वीर्यवान्** है; इन गुणो के कारण ही उसे **वीर्यवान्**, **प्रधानवान्** (प्रयत्नवान्) और **धीर** कहते हैं।

(४) भीतर और बाहर के समस्त संगकारणो को तोड़कर जो सभी प्रकार की आसक्ति के बंधन से मुक्त हो गया है उसे, इन गुणो के कारण, आजन्य कहते हैं ।

※

२६. प्रश्न—(१) किन गुणो को प्राप्त करके मनुष्य श्रोत्रिय होता है ?

(२) मनुष्य आर्य किन गुणो से होता है ?

(३) मनुष्य आचरणवान् कैसे होता है ?

(४) परिव्राजक किसे कहते है ?

उत्तर—(१) जितने भी निंदित और अनिंदित धर्म है उन सब को सुनकर और जानकर जो मनुष्य उनपर विजय प्राप्त करके नि:शंक, विमुक्त और सर्वथा निर्दु:ख हो जाता है, उसे श्रोत्रिय कहते है ।

(२) जो विद्वान् मनुष्य आस्रवो और आलयो का उच्छेद करके गर्भवास की जड काट डालता है, और जो त्रिविध (काम, रूप और अरूप) पंकमय संज्ञा को लांघकर विकल्प को प्राप्त नही होता, वह आर्य है।

(३) जिसने आचरण में पूर्णत्व प्राप्त कर लिया है, जिसे कुशल धर्मों का पूर्णज्ञान है, और जो कही भी बद्ध नही होता, जो विमुक्त है और जिसमें प्रत्याघात-

बुद्धि का सर्वथा अभाव है,वह आचरण-
वान् है ।

(४) ऊपर, नीचे और चारो ओर अथवा मध्य
मे जितने भी दु खकारक कर्म है, उन्हें
त्यागकर जो विचारपूर्वक बर्तता है, जिसने
माया, मान, क्रोध और नामरूप को नष्ट
कर दिया है उस पूर्णत्वप्राप्त पुरुष को
परिव्राजक कहते है ।

*

२७. प्रश्न—कलह और विवाद तथा परिदेव, शोक और मत्सर कहा से उत्पन्न होते है ? और अहंकार, अतिमान, तथा कलंक का उत्पत्ति-स्थान क्या है ?

उत्तर—कलह और विवाद तथा परिदेव, शोक और मत्सर एव अहकार, अतिमान तथा कलक का उत्पत्ति-स्थान प्रियवस्तुएँ है।

२८. प्रश्न—(१) इस जगत् में वस्तुएँ प्रिय कैसे होती है ?
(२) यह लोभ किससे पैदा होता है ?
(३) लोगों के लड़ाई-झगडो की जड़ यह आशा और निष्ठा किससे उत्पन्न होती है ?

उत्तर—(१) इस जगत् में राग (छद) के कारण वस्तुएँ प्रिय होती है ।
(२) राग की ही बदौलत यह लोभ पैदा होता है ।
(३) यह राग ही तमाम लड़ाई-झगडों की जड़ आशा और निष्ठा का जनक है ।

२९. प्रश्न—(१) जगत् मे राग कहां से पैदा होता है ?
(२) योजनाएँ कहा से उत्पन्न होती है ?
(३) क्रोध, लुच्चाई, कुशका और दूसरे दोष कहां से पैदा होते है ?

उत्तर—(१) जगत् में जिन्हे सुख और दु ख कहते है उन्हीसे राग पैदा होता है।
(२) रूपो में हानि और लाभ देखकर जगत् में यह मनुष्य योजनाएँ बनाया करता है।
(३) क्रोध, लुच्चाई, कुशका और दूसरे दोष भी सुख-दु ख के ही कारण उत्पन्न होते है ।

३०. प्रश्न—(१) सुख और दुःख होने का क्या कारण है?
(२) किन वस्तुओ के नष्ट होजाने से सुख-दु.ख उत्पन्न नही होते ?
(३) लाभ और हानि का उत्पत्ति-स्थान क्या है ?

उत्तर—(१) सुख और दु ख का कारण स्पर्श है । स्पर्श से ही ये सुख-दु ख पैदा होते है ?
(२) स्पर्श न हो तो ये भी पैदा न हो।
(४) लाभ और हानि का भी उत्पत्ति-स्थान यह स्पर्श ही है।

३१. प्रश्न—(१) जगत् में स्पर्श कहां से पैदा होता है ?
(२) परिग्रह किससे उत्पन्न होता है ?
(३) और, किसके नाश से यह स्पर्श उत्पन्न नही होता ?

उत्तर—(१) नाम और रूप के आश्रय से स्पर्श पैदा होता है।

(२) इच्छा के कारण परिग्रह उत्पन्न होता है। इच्छा यदि नष्ट हो जाय, तो फिर ममत्व न रहे।

(३) रूप-विचार नष्ट हो जाने से स्पर्श उत्पन्न नही होता।

३२. प्रश्न—(१) रूप-विचार किन गुणों से युक्त होने से नष्ट होता है ?

(२) सुख और दु.ख का नाशक क्या है ?

(३) इनका कैसे नाश होता है ?

उत्तर—इन प्रश्नो का एक ही उत्तर है। जो सज्ञा* का विचार नही करता, अथवा असंज्ञा का भी विचार नही करता, जो असज्ञी भी नही, और रूप-संज्ञी भी नही, उसका रूपविचार नष्ट हो जाता है। कारण यह है कि प्रपच की कल्पना इस सज्ञा से ही पैदा होती है।

३३. प्रश्न—(१) मुनि के क्या लक्षण है ?

(२) केवली किसे कहते है ?

(३) मनुष्य बुद्ध कैसे होता है ?

उत्तर—(१) जो पूर्वजन्मो को तथा स्वर्ग और नरक को जानता है, जिसका जन्मक्षय हो गया

---

* इन्द्रिय और विषय के एकसाथ मिलने पर, अनुकूल-प्रतिकूल वेदना के बाद 'यह अमुक विषय है' इस प्रकार का जो ज्ञान होता है उसे संज्ञा कहते हैं।

हैं, और जो अभिज्ञा-तत्पर है, वही मुनि है।

(२) रागों से जो सर्वथा मुक्त है, जो चित्त की विशुद्धि को जानता है, जिसका जन्म-मरण नष्ट और ब्रह्मचर्य पूर्ण हो गया है, उसे केवली कहते हैं।

(३) जिसने समस्त धर्मों को पार कर लिया है, उसे बुद्ध कहते हैं।

---

१. अ. नि. (३: ३: ६) २—१७. सु. नि. (पारायण वग्ग) १८—१९. बुद्धदेव (ना. प्र. का.) २०—२१. सु. नि. २२—२६. सु. नि. (सभियसुत्त) २७—३२. सु नि. (कलहविवाद सुत्त) ३३. म. नि (महायु सुत्त)

अंतिम उपदेश

१. भिक्षुओ ! जहांतक तुम लोग बारबार एकत्र होकर सघ का कार्य करते रहोगे, जबतक तुम में ऐक्य रहेगा, ऐक्य से तुम सघ के सब कृत्य करते रहोगे, जहांतक सघ के किसी नियम का भग नही करोगे, जहातक तुम अपने सघ के वृद्ध भिक्षुओं को मान देते रहोगे, जहातक तुम अपनी तृष्णा की अधीनता स्वीकार न करोगे, जहांतक तुम एकान्तवास में आनंद मानोगे, और जबतक तुम इस बात की चिता रखोगे कि तुम्हारे सब साथी सुखी रहे, तबतक तुम्हारी उत्तरोत्तर उन्नति ही होती जायगी, अवनति नही।

२. भिक्षुओ ! अभ्युन्नति के ये सात नियम मैं बताये देता हूँ, इन्हे ध्यानपूर्वक सुनो :—

(१) गृहसबंधी निजी काम मे आनद न मानना;
(२) व्यर्थ का बकवाद करने में आनद न मानना;
(३) निद्रा में समय बिताने में आनद न मानना;
(४) भीड़भाड पसद करनेवाले भिक्षुओ के साथ समय बिताने मे आनंद न मानना;
(५) दुर्वासनाओं के वश न होना;
(६) दुष्टो की संगति में न पडना;
(७) समाधि में अल्प सफलता पाकर उसे बीच में ही न छोड़ देना।

३. भिक्षुओ ! अभ्युन्नति के और भी सात नियम कहता हूँ, उन्हे सुनो —

(१) श्रद्धालु बने रहना,

(२) पाप-कर्म से लजाते रहना;

(३) लोकपवाद का भय रखना;

(४) विद्या का सचय करना;

(५) सत्कर्म करने में उत्साह रखना,

(६) स्मृति को जाग्रत बनाये रखना;

(७) प्रज्ञावान् रहना ।

❊

४. शीलभ्रष्ट मनुष्य की पाच प्रकार से हानि होती है '—

(१) दुराचरण से उसकी सपत्ति का नाश होता है;

(२) उसकी अपकीर्ति फैलती है;

(३) किसी भी सभा मे उसका प्रभाव नही पड़ता,

(४) शाति से वह मृत्यु नहीं पाता;

(५) मरने के वाद वह दुर्गति को प्राप्त होता है ।

५. सदाचारी मनुष्य को, उसके सदाचरण के कारण, यह पाच प्रकार का लाभ होता है —

(१) सदाचरण से उसकी सपत्ति की वृद्धि होती है;

(२) लोक में उसकी कीर्ति बढती है;

(३) हरेक सभा में उसका प्रभाव पड़ता है;

(४) शाति से वह मृत्यु पाता है,

(५) मरने के वाद वह सुगति को प्राप्त होता है ।

❊

६. अब तुम लोग अपने को ही अपना अवलंबन बनाओ। इस संसार-समुद्र में अपने मन को ही द्वीप बनाओ, धर्म को अपना द्वीप बनाओ। अपनी ही आत्मा की शरण मे जाओ, और धर्म की शरण में जाओ।

जो पुरुष मैत्री, मुदिता, करुणा और उपेक्षा इन चार स्मृत्युपस्थानों की भावना करता है, वह अपने लिए आत्मद्वीप बना लेता है, धर्मद्वीप बना लेता है। यही आत्मशरण है, यही धर्म-शरण है।

*

७. भिक्षुओ! तुम्हारा ब्रह्मचर्य चिरस्थायी रहे, और यदि तुम्हें ऐसा अनुभव होता हो, कि तुम्हारे उस ब्रह्मचर्य के द्वारा बहुत-से लोगों का कल्याण हो, बहुत-से लोगों को सुख मिले, तो मेरे सिखाये हुए 'कुशल धर्म' का सम्यक् रीति से अध्ययन और उसकी शुद्ध भावना करो।

*

८. जो मनुष्य मेरे उपदेश के अनुसार सावधानी के साथ धर्म का आचरण करेगा, वह पुर्नजन्म से छुटकारा पा जायगा, उसका दुःख नष्ट हो जायगा।

*

९. मेरे परिनिर्वाण के पश्चात् मेरे शरीर की पूजा करने की माथापच्ची में न पड़ना। मैंने तुम्हे जो सन्मार्ग बताया है, उसके अनुसार चलने का प्रयत्न करना।

*

१०. तुम्हारे मन में यह विचार आसकता है कि बुद्ध के देहावसान के बाद हमारा कोई शास्ता (शासनकर्त्ता) नहीं रहा; पर

मेरे न रहने के बाद मैंने तुम्हे जिस धर्म और विनय की शिक्षा दी है, वही तुम्हारा शास्ता होगा।

*

११. मैं तुमसे कहता हूँ कि संस्कार अर्थात् कृतवस्तु नाशवान् है, अत. सावधानी के साथ जीवन के लक्ष्य का सपादन करो

१—११. दी. नि. (महापरिनिब्बाण सुत्त)

सूक्ति-कण

सूक्ति-कण

१. दूसरे की त्रुटियों या कृत्य और अकृत्य की खोज में न रहो। तुम तो अपनी ही त्रुटियों और कृत्य-अकृत्यों पर विचार करो।

*

२. उस काम का करना अच्छा नहीं, जिसे करके पीछे पछताना पड़े, और जिसका फल रोते-बिलखते भोगना पड़े।

*

३. उसी काम का करना ठीक है, जिसे करके पीछे पछताना न पड़े, और जिसका फल मनुष्य प्रसन्नचित्त से ग्रहण करे।

*

४. पाप-कर्म दूध की तरह तुरंत नहीं जम जाता; वह तो भस्म से ढकी हुई आग की तरह थोड़ा-थोड़ा जलकर मूढ़ मनुष्य का पीछा करता है।

*

५. जैसे महान् पर्वत हवा के झकोरों से विकंपित नहीं होता, वैसे ही बुद्धिमान् लोग किसी की निंदा और स्तुति से विचलित नहीं होते।

*

६. वही पुरुष शीलवान्, बुद्धिमान् और धार्मिक है, जो न अपने लिए और न दूसरे के लिए पुत्र, धन आदि की इच्छा करता है और जो अधर्म से अपनी समृद्धि नहीं चाहता।

*

७. सहस्रों अनर्थक वाक्यों से वह एक सार्थक पद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शांति प्राप्त होती है।

सहस्रों अनर्थक गाथाओं से वह एक सार्थक गाथा श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शांति प्राप्त होती है।

*

८. जो अभिवादनशील और सदा वृद्धों की सेवा करनेवाले हैं, उनके ये चारों धर्म बढ़ते हैं—आयु, वर्ण, सुख और बल।

*

९. एक दिन का सदाचारयुक्त और ज्ञानपूर्वक जीना सौ वर्ष के शीलरहित और असमाहित जीवन से अच्छा है।

*

१०. यह समझकर पाप की अवहेलना न करे कि 'वह मेरे पास नहीं आयेगा।' एक-एक बूंद पानी से घड़ा भर जाता है। इसी तरह मूर्ख मनुष्य अगर थोड़ा-थोड़ा भी पाप संचय करता है, तो वह एक दिन पाप-समुद्र में डूब जाता है।

*

११. जो शुद्ध, पवित्र और निर्दोष पुरुष को दोष लगाता है, उस मूर्ख को उसका पाप लौटकर लगता है, जैसे वायु के रुख फेंकी हुई धूल अपने ही ऊपर आ पड़ती है।

*

१२. मनुष्य स्वयं ही अपना स्वामी है; दूसरा उसका स्वामी या सहायक हो सकता है ? अपने को जिसने भलीभाँति दमन कर लिया, वह सहज ही एक दुर्लभ सहायक प्राप्त कर लेता है।

*

१३. अनुचित और अहितकर कर्मो का करना आसान है। हितकर और शुभ कर्म परम दुष्कर है।

*

१४. जो पहले प्रमाद में था, और अब प्रमाद से निकल गया, वह इस लोक को मेघ-माला से उन्मुक्त चन्द्रमा की भांति प्रकाशित करता है।

*

१५. जो अपने किये हुए पापो को पुण्य से ढँक देता है, वह इस लोक को इस प्रकार प्रकाशित करता है, जैसे बादलों से उन्मुक्त चन्द्रमा।

*

१६. जिसने धर्म छोड़ दिया है, जो झूठ बोलता है, और परलोक का मजाक उड़ाता है, उसके लिए कोई भी पाप अकरणीय नही।

*

१७. श्रेष्ठ पुरुष का पाना कठिन है। वह हर जगह जन्म नही लेता। धन्य है वह सुख-सम्पन्न कुल, जहां ऐसा धीर पुरुष उत्पन्न होता है।

*

१८. विजय से वैर पैदा होता है; पराजित पुरुष दुखी होता है। जो जय और पराजय को छोड़ देता है, वही सुख की नीद सोता है।

*

१९. राग के समान कोई आग नही; द्वेष के समान कोई पाप नही। पचस्कंधो (रूप, वेदना, सज्ञा, संस्कार और विज्ञान) के समान कोई दु ख नही, और शांति के समान कोई सुख नही।

*

२०. भूख सब से बड़ा रोग है; शरीर सब से बडा दु ख है—इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। यथार्थ में, निर्वाण ही परमसुख है।

*

२१. आरोग्य परमलाभ है। सतोष परमधन है। विश्वास परमबधु है। और निर्वाण परमसुख है।

*

२२. सत्पुरुषो का दर्शन अच्छा है। सतो के साथ रहना सदा सुखकारक है। मूर्खों के अदर्शन (अलग रहने) से मनुष्य सचमुच सुखी रहता है।

*

२३. मूर्खों की सगति में रहनेवाला मनुष्य चिरकालतक शोक-निमग्न रहता है। मूर्खों की संगति शत्रुओ की सगति की तरह सदा ही दुःखदायक होती है। और धीर पुरुषो का सहवास अपने बधु-बांधवो के समागम के समान सुखदायी होता है।

*

२४. सच बोलना, क्रोध न करना और याचक को यथेच्छ दान देना—इन तीन बातों से मनुष्य देवताओ के निकट स्थान पाता है।

*

२५. यह पुरानी बात है, कुछ आज की नही कि, जो नही बोलता उसकी भी लोग निंदा करते हैं, और जो बहुत बोलता है उसे भी दोष लगाते हैं ! इसी तरह मितभाषी की भी निंदा करते हैं। संसार में ऐसा कोई नही, जिसकी लोग निंदा न करें। बिल्कुल ही निंदित या बिल्कुल ही प्रशंसित पुरुष न कभी हुआ, न होगा, और न आजकल है।

*

२६. काया के कोप से बच; काया पर दमन कर; काया के दुश्चरित को छोड़, काया के सुचरित का आचरण कर।

*

२७. वाणी के कोप से बच; वाणी को संयत रख; वाणी के दुश्चरित को छोड़, वाणी के सुचरित का आचरण कर।

*

२८. मन के कोप से बच; मन को वश में कर; मन के दुश्चरित को छोड़, मन के सुचरित का आचरण कर।

*

२९. राग के समान कोई आग नही; द्वेष के समान कोई अरिष्ट ग्रह नहीं; मोह के समान कोई जाल नही, और तृष्णा के समान कोई नदी नही।

*

३०. जैसे, सुनार चांदी के मैल को दूर कर देता है, उसी तरह बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वह अपने मलो (पापों) को प्रतिक्षण थोडा-थोड़ा दूर करता रहे।

*

३१. यह लोहे का मोरचा ही है जो लोहे को खा जाता है। इसी प्रकार पापी के पाप-कर्म ही उसे दुर्गति को पहुंचाते है।

*

३२. उपासना का मोरचा अनभ्यास है। मकान का मोरचा उसकी बेमरम्मती है। शरीर का मोरचा आलस्य है, और सरक्षक का मोरचा प्रमाद है।

*

३३. जो प्राणियो की हिंसा करता है, जो झूठ बोलता है, जो ससार में न दी हुई चीज को उठा लेता है अर्थात् चोरी करता है, जो पराई स्त्री के साथ सहवास करता है, जो शराब पीता है, वह मनुष्य इस लोक में अपनी जड़ आप ही खोदता है।

*

३४. दूसरे का दोष देखना आसान है, किन्तु अपना दोष देखना मुश्किल है। लोग दूसरो के दोषो को भुस के समान फटकते फिरते हैं, किंतु अपने दोषो को इस तरह छिपाते है जैसे चतुर जुआरी हरानेवाले पासे को छिपा लेता है।

*

३५. जो दूसरो के दोषो को ही सदा देखा करता है, और हमेशा हाय-हाय करता रहता है, उसकी वासनाएं बढ़ती ही जाती है, और वह उनका नाश नही कर सकता।

*

३६. बहुत बोलने से कोई पडित नहीं होता। जो क्षमाशील, वैर-रहित और अभय होता है वही पडित कहा जाता है।

*

३७. वह धर्मधर नही जो बहुत बोलता है। वही धर्मधर है, और वही धर्मविषयों में अप्रमादी है, जो पढा चाहे थोड़ा हो पर धर्म का ठीक-ठीक आचरण करता है।

*

३८. यदि किसी के सिर के बाल पक जायँ, तो इससे वह स्थविर या बड़ा नही हो जाता। उसकी उम्र भले ही पक गई हो किंतु वह व्यर्थ ही वृद्ध कहा जाता है।

*

३९. बड़ा असल में वही है, जिसमें सत्य, धर्म, अहिंसा, संयम और दम है, जो मल से रहित और धीर है।

*

४०. जो पुरुष ईर्ष्यालु, मात्सर्ययुक्त और शठ है, वह बहुत बोलने या सुंदर रंगरूप के कारण साधु नहीं हो सकता।

*

४१. साधु वही है, जिसके दोष जड़मूल से नष्ट हो गये है। जो विगतदोष और मेधावी है, वही साधु है।

*

४२. अनियमित और मिथ्याभाषी मनुष्य मूड़ मुडानेमात्र से ही भिक्षु नही हो जाता। क्या ऐसा मनुष्य भिक्षु हो सकता है जो वासना और लोभ से युक्त हो?

*

४३. वही असल मे भिक्षु है, जिसने छोटे-बड़े सब पाप त्याग दिये है। जिसके पाप शमित होगये है, वही श्रमण कहा जाता है।

*

४४. भिक्षा मागनेमात्र से कोई भिक्षु नही होता। भिक्षु वही होता है, जो धर्मानुकूल आचरण करता है।

*

४५. जो पाप और पुण्य से ऊँचा उठकर ब्रह्मचारी बन गया है, जो लोक में धर्म के साथ विचरता है, उसीको भिक्षु कहना चाहिए।

*

४६. अज्ञानी और मूढ़ मनुष्य केवल मौन रहने से मुनि नही हो जाता। वही मनुष्य मुनि है, जो तराजू की तरह ठीकठीक जांच करके सुव्रतो का ग्रहण और पापो का त्याग करता है। जो दोनो लोको का मनन करता है वही सच्चा मुनि है।

*

४७. जो प्राणियों की हिंसा करता है वह आर्य नही। समस्त प्राणियो के साथ जो अहिंसा का वर्ताव करता है वही आर्य है।

*

४८. यदि थोडा सुख छोड़ देने से विपुल सुख मिलता हो तो बुद्धिमान् पुरुष विपुल सुख का खयाल करके उस थोड़े से सुख को छोड दें।

*

४९. दूसरे को दुःख देकर जो अपना सुख चाहता है, वह वैर के जाल में फँसकर उससे छूट नही सकता।

*

५०. ऐसे ही उन्मत्त और प्रमत्त लोगो के आस्रव (चित्त के मल) बढते है, जो कर्तव्य को छोड़ देते है और अकर्तव्य को करते है।

*

५१. जो नित्य शरीर की अनित्य गति को विचारते हैं, जो अकर्तव्य से दूर रहते और कर्तव्य कृत्य को करते है, उन ज्ञानी सत्पुरुषों के आस्रव अस्त हो जाते हैं।

*

५२- श्रद्धावान्, शीलवान्, यशस्वी और धनी पुरुष जिस-जिस देश में जाता है, वहां वह पूजा जाता है।

*

५३. हिमालय के धवल शिखरो के समान संतजन दूर से ही प्रकाशते है। और, असत लोग इस तरह अदृष्ट रहते है, जैसे रात मे छोड़ा हुआ बाण।

*

५४. काषाय वस्त्र पहननेवाले बहुत-से पापी और असंयमी मिलेंगे। ये सब अपने पाप-कर्म के द्वार से नरकलोक को जायेंगे।

*

५५. असयमी और दुराचारी मनुष्य राष्ट्र का अन्न व्यर्थ खावे इससे तो आग में गरम किया हुआ लोहे का लाल गोला खा जाय वह अच्छा।

*

५६. परस्त्रीगमन करने से अपुण्य-लाभ, बुरी गति, भय और थोड़ी देर का सुख, यही मिलता है। इसलिए मनुष्य को परस्त्रीगमन नही करना चाहिए।

*

५७. जैसे असावधानी से पकड़ा हुआ कुश हाथ को काट

देता है, उसी तरह असावधानी के साथ संन्यास ग्रहण करने से नरक की प्राप्ति होती है।

*

५८. दुष्कृत (पाप) का न करना ही श्रेयस्कर है, क्योंकि दुष्कृत करनेवाले को पीछे पछताना पडता है। सुकृत का करना ही श्रेष्ठ है, जिससे मनुष्य को अनुताप न करना पडे।

*

५९. मुनि को गाव मे इस तरह विचरना चाहिए, जिस तरह भौरा फूल के रग और सुगंध को न बिगाड़ता हुआ उसके रस को लेकर चल देता है।

*

६०. कोई भी सुगध चाहे वह चदन की हो चाहे तगर की या चमेली की, वायु से उलटी ओर नही जाती। किंतु सत्पुरुषो की सुगध वायु से उलटी ओर भी जाती है। सत्पुरुषो की सुगध सभी दिशाओ को सुवासित करती है।

*

६१. चदन या तगर, कमल या जूही इन सब की सुगध से सदाचार की सुगंध श्रेष्ठ है।

*

६२. तगर और चदन की जो गध है वह अल्पमात्र है, और जो यह सदाचारियो की उत्तम गंध है, वह देवताओ तक पहुँचती है।

*

६३. चाहे कितनी ही धर्म-सहिताओ का पाठ करे, किंतु प्रमादी मनुष्य उन संहिताओ के अनुसार आचरण करनेवाला

नही होता, अतः वह श्रमण अर्थात् साधु नही हो सकता। वह तो उस ग्वाले के सम्मान है जो दूसरों की गायों को गिनता रहता है।

*

६४. जो पुरुष राग-द्वेषादि कषायों (मलों) को बिना छोड़ ही काषाय (गेरुआ) वस्त्र धारण कर लेता है, और जिसमें न संयम है न सत्य, वह कापाय वस्त्र धारण करने का अधिकारी नही।

*

६५. जिसने कषायों (मलों) का त्याग कर दिया है, जो सदाचारी, संयमी और सत्यवान् है वही काषाय वस्त्र धारण कर सकता है।

*

६६. जिस प्रकार कलछी दाल-तरकारी के स्वाद को नहीं समझ सकती, उसी प्रकार मूर्ख मनुष्य सारी जिंदगी पंडितों की सेवा में रहकर भी धर्म और ज्ञान का रस प्राप्त नही करसकता।

*

६७. जिस प्रकार जीभ दाल-तरकारी को चखते ही स्वाद पहचान लेती है, उसी प्रकार विज्ञपुरुष पंडितों की सेवा मे मुहूर्त मात्र रहकर भी धर्म और ज्ञान को प्राप्त कर लेता है।

*

६८. जबतक पाप का परिपाक नही होता, तभीतक मूर्ख मनुष्य को वह मधु-सा मीठा लगता है। किन्तु जब पाप-कर्म के फल लगने लगते हैं, तब उस मूर्ख को भारी क्लेश होता है।

*

६९. जिनके पास कोई मालमता नही, जो संचय करना नही जानने, जिनका भोजन नियत है, जिन्हे जगत् शून्यता-स्वरूप दिखाई देता है, और जिन्होने निर्वाणपद प्राप्त कर लिया है, उनकी गति उसी प्रकार मालूम नही हो सकती, जिस प्रकार कि आकाश में पक्षियो की गति।

*

७०. सौ वर्ष के आलसी और हीनवीर्य जीवन की अपेक्षा एक दिन का दृढ कर्मण्यता का जीवन कही अच्छा है।

*

७१. न आकाश मे, न समुद्र मे, न पर्वतो की खोह में कोई ऐसा ठौर है, जहा पापी प्राणी अपने किये हुए पापकर्मों से त्राण पा सके।

*

७२. वृद्धापेतक सदाचार का पालन करना सुखकर है। स्थिर श्रद्धा सुखकर है। प्रज्ञा का लाभ सुखकर है। और पापकर्मों का न करना सुखकर है।

*

७३. जिसने हाथ, पैर और वाणी को सयम में रखा है, वही सर्वोत्तम सयमी है। मैं उसीको भिक्षु कहता हूँ, जिसकी अंतरात्मा आनद-रत है, जो संयत है, एकातसेवी है और सतुष्ट है।

*

७४. जिस भिक्षु की वाणी अपने वश में है, और जो थोड़ा बोलता है, जो उद्धत नही है, और धर्म को प्रकाश में लाता है, उसीका भाषण मधुर होता है।

*

७५. न तो अपने लाभ का तिरस्कार करे, और न दूसरो के लाभ की स्पृहा ।

*

७६. इस नामरूपात्मक जगत् में जिसे बिल्कुल ही ममता नही, और जो किसी वस्तु के न मिलने पर उसके लिए शोक नहीं करता, वही सच्चा भिक्षु है ।

*

७७. ध्यान मे रत रहो, प्रमाद मत करो । तुम्हारा चित्त भोगों के चक्कर में न पड़े । प्रमाद के कारण तुम्हे लोहे का लाल-लाल गोला न निगलना पड़े । और दुःख की आग से जलते समय तुम्हें यह कहकर क्रन्दन न करना पड़े कि 'हाय यह दुःख है' ।

*

७८. जैसे जूही की लता कुम्हलाये हुए फूलों का त्याग कर देती है, वैसे ही तुम राग और द्वेष को छोड दो ।

*

७९. अपने को अपने आप उठा, अपनी आप परीक्षा कर । इस प्रकार तू अपनी आप रक्षा करता हुआ विचारशील हो सुख-पूर्वक इस लोक में विहार करेगा ।

*

८०. मनुष्य आप ही अपना स्वामी है, अपनी गति अपनेतक ही है । इसलिए तू अपने को संयम मे रख, जैसे बनिया अपने घोड़े को अपने काबू में रखता है ।

*

८१. धर्मपूर्वक माता-पिता का भरण-पोषण करे, धर्मपूर्वक व्यवहार और वाणिज्य करे। गृहस्थो को इस प्रकार आलस्य और प्रमाद छोड़कर अपना धर्म-पालन करना चाहिए।

※

८२. दु ख का समूल नाश करने के लिए ब्रह्मचर्य का व्रत-पालन अत्यत आवश्यक है।

※

८३. हस, क्रौंच, मोर, हाथी और मृग ये सभी पशु-पक्षी सिंह से भय खाते है। कौन शरीर में बड़ा है और कौन शरीर में छोटा, यह तुलना करना व्यर्थ है।

इसी प्रकार मनुष्यो में भी बौने शरीर का होते हुए भी यदि कोई प्रज्ञावान् है, तो वही वास्तव में बडा है। भारी भरकम शरीर के होते हुए भी मूर्ख मनुष्य को हम बड़ा नही कह सकते।

※

८४. संसर्ग होने से स्नेह उत्पन्न होता है। स्नेह से दु ख होता है। यह स्नेह ही दोष है, ऐसा समझकर गेंड़ा के सींग की तरह एकाकी ही रहना चाहिए।

※

८५. देख, यह आसक्ति है; इसमें सुख थोड़ा है, आस्वाद कम है, और दु ख अधिक है। सावधान! यह मछली फँसाने का आकड़ा है।

※

८६. जैसे कोई मनुष्य किसी प्रचंड धार की नदी में उतरकर तैर न सकने के कारण बह जाता है और दूसरो को पार नही

उतार सकता; वैसे ही जिस मनुष्यने धर्मज्ञान का संपादन नही किया, और विद्वानों के मुख से अर्थपूर्ण वचन नही सुने, जो स्वयं ही अज्ञान और संशय में डूबा हुआ है, वह दूसरों का किस प्रकार समाधान कर सकता है ?

८७. समाधान तो वह ज्ञानी पुरुष ही कर सकता है, जो विद्वान्, संयतात्मा, बहुश्रुत तथा अप्रकंप्य होता है, और जिसनें श्रोतावधान के द्वारा निर्वाणज्ञान का संपादन किया है।

*

८८. तू तो निष्काम निर्वाण का चिंतन कर और यह अहंकार की वासना छोड दे। अहकार का त्याग करने पर ही तुझे सुचिर शांति मिलेगी।

*

८९. जो निंदनीय मनुष्य की प्रशंसा अथवा प्रशंसनीय पुरुष की निंदा करता है, वह अपने ही मुख से अपनी हानि करता है, और इस हानि के कारण उसे सुख प्राप्त नही होता।

*

९०. जुए मे धन गँवाने से जो हानि होती है वह कम है, किंतु सत्पुरुषो के सम्बन्ध में अपना मन कलुषित करना तो सर्वस्व-हानि से भी बढ़कर आत्महानि है।

*

९१. मूर्ख मनुष्य दुर्वचन बोलकर खुद ही अपना नाश करते हैं।

*

९२. जो छिछला या छिछोरा होता है वही ज्यादा आवाज करता है, पर जो गंभीर होता है, वह शांत रहता है। मूर्ख अधभरे

घड़े की तरह शोर मचाते है, पर प्रज्ञावान् गभीर मनुष्य सरोवर की भाति सदा शात रहते है ।

*

९३. जो सयतात्मा पुरुष सब कुछ जानते हुए भी बोलते नही है, वे ही मुनि मौनव्रत के योग्य हैं ।

*

९४. यह अविद्या ही महान् मोह है, जिसके कारण मनुष्य चिरकाल से ससार मे पडा है । किंतु जो विद्यालाभी प्राणी होता है, वह वारवार जन्म नही लेता ।

*

९५. जो भी दु:ख पैदा होता है, वह सब सस्कारो से ही पैदा होता है, सस्कारो के निरोध से दु:ख की उत्पत्ति असंभव होजाती है।

*

९६. इस सारे प्रपंच का मूल अहकार है । इसका जडमूल से नाश कर देना चाहिए । अहंकार के समूल नाश से ही अत:-करण में रमनेवाली तृष्णाओ का अत हो सकता है ।

*

९७. 'अनात्मा मे आत्मा है,' ऐसा माननेवाले और नामरूप के बंधन में पड़े हुए इन मूढ मनुष्यो की ओर तो देखो ! वे यह समझते है कि 'यही सत्य है !'

९८. वे जिस-जिस प्रकार की कल्पना करते है उससे वह वस्तु भिन्न ही प्रकार की होती है, और उनकी कल्पना झूठी ठहरती है; क्योकि जो क्षणभगुर होता है वह नश्वर तो है ही ।

९९. पर आर्य लोग मानते हैं कि निर्वाण ही अविनश्वर है और वही सत्य है; और वे सत्यज्ञान के बलपर तृष्णारहित होकर निर्वाण-लाभ करते हैं।

*

१००. जिस प्रकार साप के फन से हम अपना पैर दूर रखते हैं, उसी प्रकार जो कामोपभोग से दूर रहता है वह स्मृतिमान् पुरुष इस विषभरी तृष्णा का त्याग करके निर्वाण-पथ की ओर अग्रसर होता है।

*

१०१. वासना ही जिसका उद्देश हो, और ससारीसुखों के बधन मे जो पड़ा हुआ हो, उसे छुड़ाना कठिन है; क्योंकि जो आगे या पीछे की आशा रखता है, और अतीत या वर्तमान काल के कामोपभोग मे लुब्ध रहता है, उसे कौन छुडा सकता है?

*

१०२. सोने-चांदी-के लाखो-करोड़ो सिक्को को मै श्रेष्ठ धन नही कहता। उसमें तो भय-ही-भय है—राजा का, अग्नि का, जल का, चोर का, लुटेरे का और अपने सगे सबंधियोंतक का भय है।

१०३. श्रेष्ठ और अचंचल तो मै इन सात धनो को मानता हूँ—श्रद्धा, शील, लज्जा, लोक-भय, श्रुत, त्याग और प्रज्ञा। इस सप्तविध धन को कौन लूट सकता है, और कौन छीन सकता है?

*

१०४. लोभ, द्वेष और मोह ये पाप के मूल हैं; अलोभ, अद्वेष और अमोह ये पुण्य के मूल है।

१०५. ये जो चंद्र और सूर्य आकाश-मडल में प्रकाशित हो रहे है, और ब्राह्मण जिन्हे नित्य स्तोत्रो के गान से रिझाते और पूजते है, उन चद्र-सूर्य की ओर जाने का मार्ग क्या ये ब्राह्मण वतला सकेंगे ?

जिन चद्र-सूर्य को ये ब्राह्मण प्रत्यक्ष देख सकते है, उनतक पहुँचने का मार्ग जव वे न जान ही सकते है, न वतला ही सकते है, तो उस ब्रह्मसायुज्यता के मार्ग का ये क्या उपदेश करेगे, जिसे न उन्होने ही कभी देखा है और न उनके आचार्योने ही ? यदि ब्रह्मसायुज्यता के मार्ग का वे उपदेश करते है तो यह एक विचित्र ही वात है !

*

१०६. जो स्मृतिमान् मनुष्य अपने भोजन की मात्रा जानता है उसे अजीर्ण की तकलीफ नही होती । वह आयु का पालन करते-करते वहुत वरसो के बाद वृद्ध होता है ।

*

१०७. कोई-कोई स्त्री तो पुरुप से भी श्रेष्ठ निकलती है । यदि वह वुद्धिमती, सुशीला और वडो का आदर करनेवाली तथा पतिव्रता हो तो उसे कौन दोप दे सकता है ? उसके गर्भ से जो पुत्र जन्म लेता है वह शूरवीर होता है । ऐसी सद्‌भाग्यवती स्त्रीके गर्भ से जन्म लेनेवाला पुत्र साम्राज्य चलाने की पात्रता रखता है ।

*

१०८. कृपण के धन की कैसी वुरी गति होती है ! कृपण मनुष्य से उसके जीवन-काल में किसी को भी सुख नही पहुँचता । उसका इकट्ठा किया हुआ सारा धन अन्त में राजा के खजाने में

जाता है, या चोर लूट लेते है, अथवा उसके शत्रु उसे तिड़ी-बिड़ी कर देते हैं।

कृपण के धन की वैसी ही गति होती है, जैसी जंगल के उस तालाब की, जिसका पानी किसी के काम नही आता, और वह वही-का-वही सूख जाता है ।

❋

१०९. जरा और मरण तो भारी-भारी पर्वतो से भी भयकर है ! हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल सैनिको की चतुरगिणी सेना से कही जरा और मृत्यु की पराजय हो सकती है ? जरा और मृत्यु के घर यह भेदभाव नही कि यह ब्राह्मण है और यह चाण्डाल।

❋

११०. सदाचार-रत मनुष्य इस लोक मे प्रशसा पाता है, और परलोक मे सद्‌गति ।

❋

१११. अपने हाथ से कोई अपराध हो गया हो तो उसके लिए पश्चात्ताप करना, और भविष्य में फिर कभी वह अपराध न करना, यह आर्य गृहस्थ का कर्तव्य है ।

❋

११२. धर्म को जानकर जो मनुष्य वृद्धजनो का आदर-सत्कार करते है, उनके लिए इस लोक मे प्रशंसा है और परलोक मे सुगति ।

❋

११३. भिक्षुओ ! मै तुम्हारी सेवा न करूँ तो कौन करेगा ? तुम्हारी यहा माता नही, पिता नही, जो तुम्हारी सेवा-शुश्रूषा

करते । तुम एक दूसरे की सेवा न करोगे, तो फिर कौन करेगा ?
जो रोगी की सेवा करता है वह मेरी ही सेवा करता है ।

*

११४. लोभ के फदे मे फँसा हुआ मनुष्य हिंसा भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्री-गमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, और दूसरो को भी वैसा ही करने के लिए प्रेरित करता है ।

*

११५. तुम खुद अपनी आख से देखो, कि यह धर्म अकुशल है, अत. त्याज्य है, इसे हम ग्रहण करेगे तो हमारा अहित ही होगा । अकुशल धर्म का त्याग तुम अपनी प्रज्ञा से करो—श्रुत से या मत-परम्परा से नही, प्रामाण्य शास्त्रो की अनुकूलता से या तर्क के कारण नही; न्याय के हेतु से या अपने चिरचिंतित मत के अनुकूल होने से नही, और वक्ता के आकार अथवा उसके भव्यरूप से प्रभावित होकर भी नही ।

*

११६. मुक्त पुरुष सर्वदा सुख की नीद सोता है । रागादि से रहित, नितान्त अनासक्त और निर्भय पुरुष आन्तरिक शान्ति में विहार करता हुआ सदैव सुख की नीद सोता है ।

*

११७. कटु वाक्य सुनकर हमें उन्हे मन में न लाना चाहिए ।

*

११८. हानि-लाभ को न देखकर सौ वर्ष जीने की अपेक्षा हानि-लाभ को देखकर एक दिन का जीना अच्छा है ।

*

११९. जो परवश है वह सब दुःख है । सुख तो एक स्ववशता में ही है ।

❋

१२०. मूर्ख तबतक नही समझता, जबतक कि वह पाप मे पचता नहीं । पाप में जब वह पचने लगता है, तभी उसकी समझ मे आता है कि 'अरे ! यह तो पाप-कर्म है ।'

❋

१२१. हत्या का फल हत्या है, निंदा का फल निंदा है और क्रोध का फल क्रोध । जो जैसा करता है, वैसा ही फल उसे मिलता है ।

❋

१२२. रग या रूप से मनुष्य सुज्ञेय नहीं होता । किसीको देखते ही उसपर विश्वास न कर लेना चाहिए । रूप और रग से कितने ही मनुष्य संयमी-से मालूम होते है ।

१२३. ऐसे बने हुए मनुष्य मिट्टी के नकली कुण्ड की तरह या सोने से मढे ताबे के टुकडे की तरह होते है । ऊपर से सुन्दर, किन्तु भीतर से वे महान् अशुद्ध होते है ।

❋

१२४. तुझे इस बात का अभ्यास करना चाहिए, कि मेरे चित्त में विकार नही आने पायगा, मुहँ से मै दुर्वचन नही निकालूगा, और द्वेषरहित हो मैत्रीभाव से इस संसार में विचरण करूँगा ।

❋

१२५. तुम्हारे लिए दो ही कर्तव्य है—एक तो धर्म-प्रवचन का मनन और दूसरा आर्य तूष्णीभाव, अर्थात् उत्तम मौन ।

❋

१२६. उनके लिए अमृत का द्वार बन्द है, जो कानों के होते हुए भी श्रद्धा को छोड़ देते हैं।

*

१२७. जिन जीवों के तमाम आस्रव अर्थात् मल नष्ट हो जाते हैं, उन्हींको 'जिन' कहते हैं।

*

१२८. परमलाभ आरोग्य है, और परमसुख निर्वाण।

*

१२९. सत्य-प्राप्ति का उपकारी धर्म प्रयत्न है। मनुष्य प्रयत्न न करे, तो फिर सत्य की प्राप्ति कहां से हो?

और, प्रयत्न का उपकारी धर्म उद्योग है। बिना उद्योग के मनुष्य प्रयत्न नहीं कर सकता।

*

१३०. उच्चकुल में जन्म लेने से लोभ थोड़ा ही नष्ट हो जाता है। उच्चकुल में जन्म लेने से न द्वेष ही नष्ट होता है, न मोह ही।

१३१. उच्चकुल में भले ही जन्म न लिया हो, किन्तु यदि मनुष्य धर्ममार्ग पर आरूढ होकर धर्म का ठीक-ठीक आचरण करता है, तो वह प्रशंसनीय है, पूज्य है।

*

१३२. जो मनुष्य अपनी उच्चकुलीनता का अभिमान करता है, और दूसरों को नीची निगाह से देखता है, वह प्रव्रज्या ले लेने पर भी 'असत्पुरुष' ही कहलायगा।

१३३. यह वृक्षो की छाया है, यह शून्य गृह है। इसके नीचे बैठकर प्रमाद मत करो, ध्यान करो।

*

१३४. चाहे गृहस्थ हो चाहे संन्यासी, यदि वह मिथ्या प्रतिज्ञावाला है, तो वह मिथ्या प्रतिपत्ति (असत्य विश्वास) के कारण कुशलधर्म का आराधक नही हो सकता।

*

१३५. उलीचो, उलीचो, इस नाव को उलीचो; उलीचने से तुम्हारी यह नाव हलकी हो जायगी, और तभी जल्दी-जल्दी चलेगी। राग और द्वेष का छेदन करके ही तुम निर्वाणपद पा सकोगे।

*

१३६. काट डालो वासना के इस बीहड़ वन को। एक भी वृक्ष न रहने पाये। यह महाभयकर वन है। जब वन और उसमें उगनेवाली झाड़ियो को काट डालोगे, तभी तुम निर्वाणपद पाओगे।

*

१३७. आत्मस्नेह को इस तरह काटकर फेंकदे, जिस तरह लोग शरद ऋतु के कुमुद को हाथ से तोड़ लेते हैं। शांति के मार्ग का आश्रय ले—यह बुद्ध-द्वारा उपदिष्ट मार्ग है।

*

१३८. बुद्ध के निर्दिष्ट मार्ग पर वही चल सकता है, जो मन, वचन और काया को पापो से बचाता है।

*

१३९. यह ब्रह्मचर्य न तो आदर-सत्कार प्राप्त करने के लिए है, न शील-सपत्ति प्राप्त करने के लिए—और न समाधि-संपत्ति

या प्रज्ञा प्राप्त करने के लिए है। यह ब्रह्मचर्य तो आत्यतिक चित्त-विमुक्ति अर्थात् निर्वाणपद प्राप्त करने के लिए है। आत्यकिक चित्त-विमुक्ति ही ब्रह्मचर्य का सार है, और यही ब्रह्मचर्यव्रत का पर्यवसान भी है।

*

१४०. जिस श्रद्धालु गृहस्थ मे सत्य, धर्म, धृति और त्याग ये चार गुण है, वह इस लोक से परलोक मे जाकर शोक नही करता।

*

१४१. वही बात बोलनी चाहिए, जो अपनी आत्मा के विरुद्ध न हो, और जिससे किसीको दुःख न पहुँचे। यही सुभाषित वाक्य है।

१४२. वही प्रिय बात बोलनी चाहिए, जो आनददायक हो, और ऐसा न हो कि दूसरे के लिए प्रिय बात बोलने से पाप लगे।

१४३. मेरी वाणी सदा सत्य हो, यही सनातनधर्म है।

१४४. सतोने कहा है कि सुभाषित वाक्य ही उत्तम है, धर्म की बात कहना, अधर्म की न कहना, यह दूसरा सुभाषण है; प्रिय बोलना, अप्रिय न बोलना यह तीसरा सुभाषण है, सत्य बोलना, असत्य न बोलना, यह चौथा सुभाषण है।

*

१४५. भिक्षुओ! अब तुम लोग जाओ, घूमो; जनता के हित के लिए, जनता के सुख के लिए, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण के लिए घूमो। कोई दो भिक्षु एक तरफ न जाना। तुम लोग उस धर्म का उपदेश करो जो आदि में कल्याणकारी है, मध्य मे कल्याणकारी है और अत में कल्याणकारी है।

१. ध. प. (पुप्फवग्गो). २—४ ध. प. (बालवग्गो) ५—६ ध. प. (पण्डितवग्गो) ७—६ ध. प. (सहस्सवग्गो) १०—११ ध. प. (पापवग्गो) १२—१३. ध. प. (अत्तवग्गो). १४—१६. ध. प. (लोकवग्गो) १७ ध. प. (बुद्धवग्गो) १८—२३. ध. प. (सुखवग्गो) २४—२८. ध. प. (कोधवग्गो) २६—३५. ध. प. (मलवग्गो) ३६—४७. ध. प. (धम्मट्ठवग्गो) ४८—५३. ध. प. (पकिण्णक वग्गो) ५४—५८. ध. प. (निरयवग्गो). ५६—६२. ध. प. (पुप्फवग्गो) ६३—६५. ध. प. (यमकवग्गो) ६६—६८. ध. प. (बालवग्गो) ६६. ध. प. (अर्हन्तवग्गो) ७०. ध. प. (सहस्सवग्गो) ७१. ध. प. (पापवग्गो) ७२. ध. प. (नागवग्गो) ७३—८०. ध. प. (भिक्खुवग्गो) ८१. सु. नि. (धम्मिक सुत्त) ८२. सु. नि. ८३. निदानवग्गो (भिक्खुसंयुत्त) ८४. सु. नि. (खग्गविषाण सुत्त) ८५. सु. नि. (खग्गविषाण सुत्त) ८६—८७. सु. नि. (नावा सुत्त). ८८—६१. सु. नि. (कोकालिक सुत्त) ६२—६३. सु. नि (नालक सुत्त) ६४—६५. सु. नि. (द्वयतानुपस्सना सुत्त) ६६. सु. नि (तुवट्टक सुत्त) ६७—६६. सु नि (द्वयतानुपस्सना सुत्त) १०० सु नि. (काम सुत्त) १०१. सु. नि. (गुहट्ठक सुत्त) १०२. सु नि. (दुट्ठट्ठक सुत्त) १०१. अं नि. (धन सुत्त) १०४ अं नि (कालाम सुत्त) १०५. दी. नि. (तेविज्ज सुत्त) १०६—११०. बु. ली. सा. स. (कोसल संयुत्त) १११. दी नि. (सामञ्जफल सुत्त) ११२. बु च (अनाथपिंडक-दीक्षा) ११३. बु. च. (पृष्ठ ३३८) ११४—११५. अं. नि. (३. ७. ५) ११६ अं. नि (३. ४. ५.) ११८. बु. च (सुदरी सुत्त) ११८ थेरी अवदान, द्वितीयभाणवार. ११६. बु च. (विसाख सुत्त)

१२०—१२१. बु च (सगाय सुत्त) १२२—१२३. स नि. (३ः २ः १) १२४. म. नि. (ककचूपमसुत्तन्त) १२५—१२७. म नि. (पासरासि सुत्तंत) १२८ म. नि (मागंदिय सुत्तत) १२६. म नि. (चंकि सुत्त) १३०—१३२ म नि (सधुरिस धम्म सुत्तंत) १३३ स नि. (आनज सप्पाव सुत्तन्त) १३४. स. नि (सुभ सुत्तन्त) १३५ ध. प. (भिक्खुवग्गो) १३६—१३८ ध प. (मग्गवग्गो) १३६. म नि (महासारोपम सुत्त) १४० सु नि (आलवक सुत्त) १४१—१४४ सु नि (सुभासित सुत्त) १४५ सं नि (४—१—४)

कोश

अकुशल	=	पाप; दुष्कृत्य
अकंप्य	=	स्थिर
अनागामी	=	कामवासना और क्रोध इन दो संयोजनो का सपूर्णतया उच्छेद करनेवाला श्रमण; मज्झिमनिकाय के संगीति-परियाय सुत्त मे अनागामी के पांच प्रकारो का उल्लेख मिलता है—अंतरापरिनिर्वायी, उपहत्यपरिनिर्वायी, असंस्कारपरिनिर्वायी, ससंस्कारपरिनिर्वायी और ऊर्ध्वंस्रोत-अकनिष्ठगामी।
अनादान	=	अपरिग्रह
अनुत्तर	=	जिससे उत्तम कोई दूसरा न हो।
अनुशय	=	मल
अभिज्ञा	=	दिव्य ज्ञान
असपत्न	=	जिसका कोई प्रतिस्पर्धी या शत्रु न हो।
असमाहित	=	समाधिरहित; अशांत
अष्टांगिकमार्ग	=	आठ अंगोवाला मार्ग; आठ अग ये है—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् सकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि। इसे 'मध्यमा प्रतिपदा' भी कहते हैं।

= आश्रय; बौद्ध दर्शन में आयतन दो प्रकार के है—आध्यात्मिक या आंतरिक और बाह्य। चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और मन ये आध्यात्मिक आयतन है। और, रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श और धर्म ये बाह्य आयतन है।

आर्यसत्य = उत्तमसत्य, जो चार प्रकार का है—दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध और दुःखनिरोध का मार्ग।

आस्रव = मल, प्रवाह

आर्हत = अर्हत का धर्म

उपेक्षा = उदासीनता; तीसरा बोध्यंग

उपोसथ = उपवास का दिन

ओघ = भवसागर; संसार-प्रवाह

अंत = अतिसीमा

ऋद्धिपाद = असाधारण क्षमता या दिव्य शक्ति

कषाय = मल

कुशल = पुण्य; सत्कर्म

कोग = पुनर्जन्म देनेवाला कर्म

छंद = राग

दांत = जिसने इंद्रियों का सम्पूर्णतया दमन कर लिया है।

दौर्मनस्य = दुर्मनता; मानसिक दुःख

परिदेव = रोना-विलपना

पचोपादान	=	पाच अभिनिवेश, जो ये है— रूप, वेदना, सज्ञा, संस्कार और विज्ञान ।
प्रतिपत्ति	=	प्राप्ति; मार्ग
प्रधान	=	प्रयत्न; निर्वाणसबंधी प्रयत्न ।
प्रविचय	=	संग्रह; अन्वेषण
प्रवृज्या	=	संन्यास
प्रश्रब्धि	=	शांति; एक बोध्यग
बोध्यंग	=	निर्वाण-ज्ञान के अग, जो सात है—स्मृति, धर्मविचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा ।
मार	=	विषय
रति	=	सुखोपभोग के पदार्थों में आसक्ति
वितर्क	=	मिथ्या सकल्प
विज्ञान	=	चित्त की धारा
वीर्य	=	उद्योग, मनोबल
वृपल	=	चाडाल
वेदना	=	इद्रिय और विषय के एकसाथ मिलने के बाद चित्त मे जो दु ख-सुख आदि विकार उत्पन्न होता है उसे वेदना कहते है ।
व्यापाद	=	क्रोध
शासन	=	शिक्षा, धर्म
शास्ता	=	गुरु
शीलव्रत	=	श्रमण सन्यासी के आचार और व्रत
श्रावक	=	गृहस्थ

श्रोतावधान	=	श्रद्धा और प्रज्ञापूर्वक सुनना
समाहित	=	एकाग्र
संबोधि	=	परम ज्ञान; मोक्ष-ज्ञान
सयोजन	=	मन का बधन
सज्ञा	=	इंद्रिय और विपय के एकसाथ मिलने पर, अनुकूल-प्रतिकूल वेदना के बाद 'यह अमुक विपय है' इस प्रकार का जो ज्ञान होता है उसे सज्ञा कहते हैं।
स्कन्ध	=	समुदाय

सस्ता-साहित्य-मण्डल के

प्रकाशन

१—दिव्य-जीवन ।=)
२—जीवन-साहित्य (दो भाग) १)
३—तामिलवेद ॥)
४—भारत में व्यसन और व्यभिचार ॥।=)
५—सामाजिक कुरीतियाँ (ज़ब्त : अप्राप्य) ॥)
६—भारत के स्त्री-रत्न (दो भाग) १॥-)
(तीसरा भाग) १)
७—अनोखा (विक्टर ह्यूगो) १।=)
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान ॥=)
९—यूरोप का इतिहास २)
१०—समाज-विज्ञान १॥)
११—खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र ॥≡)
१२—गोरों का प्रभुत्व ॥=)
१३—चीन की आवाज (अप्राप्य) ।-)
१४—दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह १।)
१५—विजयी बारडोली २)
१६—अनीति की राह पर ।≡)
१७—सीताजी की अग्नि-परीक्षा ।-)
१८—कन्या-शिक्षा ।)
१९—कर्मयोग (अप्राप्य) ।=)
२०—कलवार की करतूत =)
२१—व्यवहारिक सभ्यता ॥)
२२—अंधेरे में उजाला ॥)
२३—स्वामीजी का बलिदान (अप्राप्य) ।-)
२४—हमारे ज़माने की ग़ुलामी (ज़ब्त : अप्राप्य) ।)
२५—स्त्री और पुरुष ॥)
२६—घरों की सफ़ाई ।)
२७—क्या करें ? (दो भाग) १॥=)
२८—हाथ की कताई-बुनाई (अप्राप्य) ॥=)
२९—आत्मोपदेश ।)
३०—यथार्थ आदर्श जीवन (अप्राप्य) ॥-)
३१—जब अंग्रेज़ नहीं आये थे— ।)
३२—गंगा गोविंदसिंह (अप्राप्य) ॥=)
३३—श्रीरामचरित्र १।)

३४—आश्रम-हरिणी ।)
३५—हिन्दी-मराठी-कोष २)
३६—स्वाधीनता के सिद्धान्त ॥)
३७—महान् मातृत्व की ओर ॥=)
३८—शिवाजी की योग्यता (छप रही है) ॥)
३९—तरंगित हृदय (छप रही है) ॥)
४०—नरमेध १॥)
४१—दुखी दुनिया ॥)
४२—जिन्दा लाश ॥)
४३—आत्म-कथा (गांधीजी) दो खण्ड सजिल्द १॥)
४४—जब अंग्रेज आये (जब्त: अप्राप्य) १।=)
४५—जीवन-विकास अजिल्द १।)
सजिल्द १॥)
४६—किसानों का बिगुल (जब्त) =)
४७—फांसी ? ॥)
४८—अनासक्तियोग तथा गीता-बोध (श्लोक-सहित) ।=)
अनासक्तियोग =)
गीताबोध— -)॥
४९—स्वर्ण-विहान (जब्त) ।=)
५०—मराठों का उत्थान पतन २॥)
५१—भाई के पत्र १॥) सजिल्द २)
५२—स्वगत— ।=)
५३—युग-धर्म (जब्त:अप्राप्य) १=)
५४—स्त्री-समस्या १॥)
५५—विदेशी कपड़े का मुक़ाबला ॥=)
५६—चित्रपट ।=)
५७—राष्ट्रवाणी (अप्राप्य) ॥=)
५८—इंग्लैण्ड में महात्माजी १)
५९—रोटी का सवाल १)
६०—दैवी सम्पद् ।=)
६१—जीवन-सूत्र ॥)
६२—हमारा कलंक ॥=)
६३—बुद्बुद ॥)
६४—संघर्ष या सहयोग ? १॥)
६५—गांधी-विचार-दोहन ॥)
६६—एशिया की क्रांति (जब्त) १॥)
६७—हमारे राष्ट्रनिर्माता २॥)
सजिल्द ३)
६८—स्वतंत्रता की ओर— १॥)
६९—आगे बढ़ो ! ॥)
७०—बुद्ध-वाणी ॥=)

पता—सस्ता-साहित्य-मण्डल, नया बाज़ार, दिल्ली ।